विचारतरङ्ग

वेदकुमारी घई

विचारतरङ्ग

(सांस्कृतिक और साहित्यिक निबन्ध)

प्रो. वेदकुमारी घई

पूर्वाचार्या एवं संस्कृतविभागाध्यक्षा

पूर्वकलासङ्कायाध्यक्षा

जम्मू विश्वविद्यालय



हाइब्रो पब्लिकेशन्ज़

बाड़ी ब्राह्मणा, जम्मू

VICHARATARANGA

by

Prof. Vedkumari Ghai

ISBN : 978-93-82670-95-7

आभार

इस किताब के प्रकाशन के लिए जे एंड के अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लेंगवेजज़ का आर्थिक सहयोग के लिए धन्यवाद। पुस्तक में प्रकाशित सामग्री विषयक किसी भी विवाद या भूल-चूक के लिए अकैडमी की कोई जिम्मेवारी नहीं है। **-लेखिका**

प्रथम संस्करण

2018

*

प्रतियां

500

*

मूल्य

₹ 200/-

*

प्रकाशक

हाईब्रो पब्लिकेशन्ज़

बाड़ी ब्राह्मणां, जम्मू

*

मुद्रक

क्लासिक प्रिंटर्ज़

बाड़ी ब्राह्मणां, जम्मू - 181133

Mob.: 94191-49293

विषय सूची



डा० नीरू शर्मा

पुरोवाक्

संस्कृति समाज का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है जिस के बिना समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। हमारी भाषा, साहित्य, कलाएं, भौतिक और आध्यात्मिक विकास के विभिन्न सोपान सभी संस्कृति के अंग होते हैं। संस्कृति के कुछ तत्त्व जैसे सत्य, दया, प्रेम आदि शाश्वत होते हैं जबकि कुछ तत्त्व देश और काल के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं।

भारतीय संस्कृति, भाषाविज्ञान एवं वेदों के विविध पक्षों की गम्भीर अध्येत्री एवं संस्कृत, हिन्दी, डोगरी लेखकों में मूर्धन्य विदुषी परम आदरणीया पद्मश्री प्रो. वेदकुमारी घई के इस निबन्धसंग्रह के लिए पुरोवाक् लिखना मेरे लिए सौभाग्य एवं गौरव का विषय है। विदुषी लेखिका न केवल संस्कृत साहित्य, संस्कृति तथा भारतीय दार्शनिक परम्परा को पूर्णतया समर्पित मनीषिणी हैं अपितु व्यक्तिगत जीवन में भी उच्च मानव-मूल्यों को जीती हैं। जब कोई प्रबुद्ध लेखक उन मूल्यों को अपने जीवन में ढाल लेता है तो उसकी वाणी एवं लेखनी से भी नये एवं बहुमूल्य विचारों का प्रस्फुटन एवं पल्लवन होने लगता है। प्रो. घई के स्वभाव में सौम्यता, माधुर्य, गम्भीर अध्ययनशीलता और सादगी का संतुलन सदैव बना रहता है। बहु आयामी व्यक्तित्व की स्वामिनी वे भारतीय संस्कृति की प्रतीक हैं।

प्रस्तुत कृति 'विचारतरङ्ग' में कुल तेइस निबन्ध संगृहीत हैं। सभी निबन्ध रोचक, सारगर्भित तथा संग्रहणीय हैं। प्रथम निबन्ध 'प्राचीन भारतीय साहित्य में संघर्षों का समाधान' में प्राचीन संस्कृत साहित्य में उल्लिखित विभिन्न संघर्षों को उदाहरण सहित पाठकों के समक्ष रखा गया है। रामायण में कैकेयी

के दो वर मांगने से उत्पन्न संघर्ष का समाधान राम की त्याग भावना से हुआ। महाभारत में जब कौरवों और पाण्डवों के मध्य युद्ध हुआ तो रक्तपात के पश्चात् प्राप्त हुई विजय पर दु:खी होते हुए युधिष्ठिर को कहना पड़ा था- "अपने इन सम्बन्धियों को मौत के घाट उतार कर तीनों लोकों का राज्य भी हमें खुशी नहीं दे सकता" इसके पश्चात् निबन्ध में वर्गसंघर्ष, क्षेत्रीय संघर्ष, धार्मिक संघर्ष का वर्णन समाधानों सहित किया गया है। आधुनिक समय में उपर्युक्त संघर्षों ने भयावह रूप धारण कर लिया है। मानव-मूल्य बिखरते जा रहे हैं। भाई-भाई के खून का प्यासा है। ऐसे में यह लेख मानव जाति को सन्देश देता है कि संघर्ष चाहे कितना भी जटिल क्यों न हो ? चाहे हमें सभी दरवाज़े बन्द क्यों न करने पड़ें, पर उम्मीद की एक खिड़की सदैव खुली रखनी चाहिए। 'ज्ञान के भण्डार वेद' इस निबन्ध में प्रो. घई ने वेदों में उपलब्ध महत्त्वपूर्ण जानकारी पाठकों तक पहुंचाई है। वैदिक साहित्य के अमर सूक्तों में संपृक्त भारतीय संस्कृति आदिकाल से वर्तमान युग तक पहुंच कर और उभर कर सामने आई है। पारिवारिक और सामाजिक क्षेत्र में सौहार्द के लिए अनेक विचार बिन्दु वेदों में मिलते हैं। सामाजिक और राजनैतिक स्तर पर राष्ट्र की प्रगति का सूत्र ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त में मिलता है जिसमें राष्ट्रवासियों को मिलकर शालीनता से बातचीत करने और एक-दूसरे के मन को समझने को कहा गया है-

समानो मन्त्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम्। (पृ. 17)

विश्वशान्ति का मूलमन्त्र यजुर्वेद की यह उक्ति है-

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे॥

सारी दुनिया के लोग मुझे मित्र की निगाह से देखें और मैं भी सारी दुनिया को मित्र की निगाह से देखूं। विश्वमैत्री की यह दृष्टि वैदिक संस्कृति की प्रमुख विशेषता है। (पृ. 17)

शोधपरक एवं ज्ञानवर्धक यह लेख पठनीय एवं संग्रहणीय है।

'हर्ष की नाट्यकृतियों में तत्कालीन संस्कृति' इस शोधात्मक निबन्ध में तत्कालीन संस्कृति का चित्रण उदाहरणों सहित किया गया है। शोधछात्रों के लिए यह लेख पथप्रदर्शक है।

'विज्ञान, दर्शन और संस्कृति में समन्वय की आवश्यकता यह निबन्ध आज के' संदर्भ में सटीक एवं ज्ञानप्रद है। विज्ञान और दर्शन दोनों सत्य की खोज में संलग्न हैं। जहां विज्ञान बाह्य सृष्टि के तत्त्वों की पहचान कराता है वहां दर्शन सूक्ष्म अध्यात्म तत्त्व की खोज करता है।

किसी भी देश की संस्कृति आज संकुचित दृष्टिकोण से नहीं चल सकती। विज्ञान और दर्शन से समन्वित विश्व-संस्कृति का विश्वकल्याणकारी स्वरूप होना चाहिए। कहीं वह वायुप्रदूषण, जलप्रदूषण एवं ध्वनिप्रदूषण आदि से विकृत न हो जाए। भोग विलास के साधनों का अनियंत्रित प्रयोग उसे अपसंस्कृति न बना दे। प्रो. घई के अनुसार इस दिशा में भारत को आगे आना होगा। यहां प्राचीनकाल से ही आध्यात्मिक चिन्तन की प्रधानता रही है। पश्चिम के विज्ञान और पूर्व के अध्यात्म के संयोग से ही इस संस्कृति का आविर्भाव होगा। (पृ. 41) अपनी परिधि में बहुमूल्य ज्ञान समेटे हुए यह लेख आधुनिक विवेकशील विचारकों के लिए बहुत उपयोगी है।

"प्रो. वासुदेवशरण अग्रवाल और वेदविद्या के क्षेत्र में उनका योगदान" बहुत महत्त्वपूर्ण निबंध है। प्रो. वासुदेवशरण अग्रवाल का वेद, पुराण, साहित्य, हिन्दी साहित्य, लोक साहित्य, धर्म, दर्शन, व्याकरण, इतिहास, कला-संस्कृति, मुद्राशास्त्र और पुरातत्त्व इन सभी क्षेत्रों में अमूल्य योगदान है। इस निबंध में वेदों में वर्णित सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है।

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्नी उरुलोकं पृथिवी नः करोतु॥ (पृ. 59)

प्रो. अग्रवाल इस मंत्र के माध्यम से तीन महत्त्वपूर्ण बातों को हमारे समक्ष रखते हैं। प्रथम यह है कि आध्यात्मिक जीवन के साथ राष्ट्रीय जीवन के भी आधार हैं–सत्य, ऋत, दीक्षा, तप आदि शाश्वत तत्त्व। इन्हीं से संस्कृति का निर्माण होता है।

दूसरी है यह कि राष्ट्र के साथ पृथ्वी का संबंध संस्कृति के द्वारा ही स्थिर रहता है। तीसरी यह है सांस्कृतिक विजय के मार्ग में पृथ्वी की दिक् सीमायें अनन्त हो जाती हैं। प्रो. घई को इनकी शिष्या होने का गौरव प्राप्त है।

''बसोह्ली चित्रकला'' का पहाड़ी शैली की चित्रकला में विशेष स्थान है। प्रो. घई ने बहुत सूक्ष्मता से चित्रों का अवलोकन एवं अध्ययन कर उनका विवेचन पाठकों के समक्ष रखा है। इन्होंने कुछ सुझाव भी दिये हैं जो ध्यान देने योग्य हैं यथा–चित्रकला का संरक्षण एवं मूल्यांकन विष्णुधर्मोत्तरपुराण के परिप्रेक्ष्य में होना चाहिए।

''ध्वनि विज्ञान का महत्त्व, डोगरी कविता में ध्वन्यात्मक शब्द चित्रण तथा हिन्दी की वैज्ञानिक तकनीकी शब्दावली के प्रसार की आवश्यकता'' ये तीनों लेख भाषा विज्ञान से संबंधित हैं तथा बहुत महत्त्वपूर्ण एवं ज्ञानवर्धक हैं।

''डुग्गर संस्कृति में नागपूजा, जम्मू के प्राचीन मंदिर, जम्मू–कश्मीर की धरती : धार्मिक सांस्कृतिक समन्वय, बदलते देश का स्वर, पर्यावरण संरक्षण और महिलायें एवं शेष सारे निबंधों के माध्यम से पाठकों को भारत की समृद्ध संस्कृति से जोड़ने का स्तुत्य प्रयास है।

अपने विविध लालित्यपूर्ण शोधनिबंधों के माध्यम से विदुषी लेखिका पद्मश्री प्रो. वेद कुमारी घई ने भारतीय संस्कृति के आदर्शों एवं समयानुकूल परिवर्तित होते आयामों का परिचय कराया है। अनेक दृष्टान्तों से संपृक्त एवं रोचक शैली में लिखे गये ये निबंध विदुषी लेखिका की गंभीर वैदुष्यपूर्ण, गवेषणात्मक तथा तत्त्वान्वेषिणी दृष्टि को प्रदर्शित करते हैं।

अंत में मैं इस निर्णय पर पहुंची हूँ कि ''विचार तरङ्ग'' एक बहुमूल्य

कृति है। यह सही दिशा में उठाया गया सही कदम है। इस के द्वारा प्रो. घई ने नवयुवकों एवं शोधछात्रों के मन में अपनी संस्कृति से जुड़ने एवं उसे आत्मसात् करने की लालसा उत्पन्न कर उनका मार्गदर्शन किया है। इस दृष्टि से यह सत्प्रयास है, जिसका हिन्दी साहित्य जगत् में स्वागत है।

मैं हृदय से कामना करती हूँ कि परम आदरणीया मेरी गुरु पद्मश्री प्रो० वेद कुमारी घई स्वस्थ रहें, दीर्घायु हों। निकट भविष्य में भी अपनी लेखन प्रक्रिया से समाज को नयी राह दिखाती रहें। इनका वरद हस्त हमेशा हमारे सिर पर रहे और ये हमें कार्य करने की प्रेरणा एवं उत्साह प्रदान करती रहें।

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ!

नीरू शर्मा
भूतपूर्व मुख्य संपादिका
(कोश विभाग)
जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति
एवं भाषा अकैडमी जम्मू।



प्रो० रामप्रताप
राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त

भावतरङ्ग

मेरे गीत तुम्हारे गीत ऊर्मिका की तरङ्गों में।
चमत्कृति की चमक चमकी विचारों के सब रङ्गों में।। 1 ।।

वेदकृत पद्यों की रचना हृदय में भरतीं भावों को।
ये भीतर ही भीतर जाकर बनातीं गहरे घावों को।। 2 ।।

पिया का प्रेम पा करके प्रिया धन्यास्मि कहती है।
कथं रजनी मया नेया विरहिणी होकर रहती है।। 3 ।।

वह जाती प्रिय से मिलने को है पाया जब भी आमन्त्रण।
हृदयकलिका खिल जाती है प्रफुल्लित हो जाता तन मन।। 4 ।।

उमड़ते मन के भावों पर सजे हैं भाषा के परिधान।
भाव भाषा के सङ्गम से कृति में आये नूतन प्राण।। 5 ।।

भाव भाषा से बढ़कर हैं या भाषा ने बाजी मारी।
नहीं निर्णय कर पाती है हमारी बुद्धि बेचारी।। 6 ।।

विचारों की तरङ्गों में भाव लहरें जब मिलती हैं।
तभी कविता की धारायें कविमुख से निकलती हैं।। 7 ।।

तड़पते मन के भावों को शब्द ही व्यक्त करते हैं।
इष्टदेवों की पूजा तो उन्हीं के भक्त करते हैं।। 8 ।।

यहां कविता के मन्दिर में स्नेह के दीप जलते हैं।
घृणातम को हटा करके हृदय में प्रेम भरते हैं।। 9 ।।

यहां की चित्रशाला में भी ऐसे चित्र मिलते हैं।
रंग और भाव जिनमें एक वैसे मित्र मिलते हैं।। 10 ।।

यहां की नाट्यशाला में किया जिस पात्र ने अभिनय।
निभा कर भूमिका उत्तम स्वयं का दे दिया परिचय।। 11 ।।

यहां की पाकशाला में बने शब्दों से जो व्यञ्जन।
श्रवण से उनको चखते हैं कला के पारखी सज्जन।। 12 ।।

वेद के गद्यगीतों में कहीं सीता बिलखती है।
मेनका हृष्टमनसा है शकुन्तला भी थिरकती है।। 13 ।।

वेद की गद्य रचना के विचारों में बहुत दम है।
दीप्त आशा की ज्योति से अंधेरा हो गया कम है।। 14 ।।

ये अज्ञ को विज्ञ करते हैं विज्ञ को विज्ञतर करते।
हवा का रुख बदलते हैं ज़माने में बदल करते।। 15 ।।

समस्यायें जीवन की तो सुलझती हैं विचारों से।
हैं आते प्राण संस्कृति में उत्सवों से त्यौहारों से।। 16 ।।

बदलते देश का स्वर है कहीं स्वातन्त्र्य के संग्राम।
अहिंसादूत गांधी का कहीं मिल जाता है पैग़ाम।। 17 ।।

ध्वनिविज्ञान समझाया किया पंजाब का वर्णन;
नशा छोड़ें करें खेती करें विद्याओं का अर्जन।। 18 ।।

गद्य अरु पद्य दोनों से बनी नरसिंह की मूरत।
खुशी से झूम उठते हैं भक्तजन देखकर सूरत।। 19 ।।

वेदविद्या की सरिता है ज्ञानसागर है चारों वेद।
वारिधिलीन नदिया सी वेदमय हो गई है वेद।। 20 ।।

वेद की शिक्षा पाने से शुद्ध होते हैं तन मन धन।
मुक्ति का लाभ मिलता है, धन्य होता है नर जीवन।। 21।।

तरङ्गें ये विचारों की बढ़ायें वेद का सम्मान।
इन्हीं से नेत्रसुख पाकर सुजन कर लें मन में भी ध्यान।। 22 ।।

हृदय सागर में आ करके उठेंगी प्रेम की लहरें।
तप्त मानवता का सन्ताप करेंगी दूर ये लहरें।। 23।।

प्रो० रामप्रताप
पूर्वाचार्य, संस्कृत विभाग,
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

अपनी ओर से



गुरुजनों की कृपा से जो थोड़ी बहुत सूक्ष्म दृष्टि मुझे प्राप्त हुई है उसी से समाज और संस्कृति के विविध पक्षों को देखने का प्रयास इस लेख संग्रह विचारतरंग में किया गया है। संघर्ष का नाम ही जीवन है अत: समाज में कई प्रकार के संघर्ष चलते रहते हैं जिन का समाधान करने के लिए यत्न भी होते रहते हैं। भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि इस में विज्ञान और दर्शन का समन्वय दिखाई देता है। लोक संस्कृति के महत्त्वपूर्ण अंग सैंकड़ों मेले और त्यौहार हमारी सांस्कृतिक विरासत को पीढ़ी दर पीढ़ी आगे पहुंचाते हैं। अतीत में भी इन के माध्यम से हमारे व्यापार, शिल्प, उद्योग, ललितकलाओं-संगीत, नृत्य, नाट्य सभी को बढ़ावा मिलता रहा है। भाषा संस्कृति की वाहिका होती है। भारत में अनेक भाषायें हैं। सब से अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा हिन्दी है अत: हिन्दी की वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली के प्रसार की आवश्यकता है जो सभी भारतीय भाषाओं के मध्य सेतु का कार्य कर सके। आज के युग में व्यक्ति का काम कम से कम तीन-चार भाषाओं को जाने बिना नहीं चल सकता। ध्वनिविज्ञान हमें अपनी मातृभाषा से भिन्न भाषाओं को सीखने में विशेष सहायता देता है अत: ध्वनिविज्ञान का अध्ययन उच्च स्तर की शिक्षा में अवश्य होना चाहिए।

जम्मू-कश्मीर भारत का शीर्षस्थानीय प्रदेश है। भारत के विविध प्रदेशों से लाखों लोग प्रति वर्ष कश्मीर के प्रसिद्ध तीर्थ अमरनाथ तथा जम्मू के प्रसिद्ध तीर्थ वैष्णवी धाम की यात्रा के लिए आते हैं। भारत के विभाजन के समय हुए भयंकर दंगों से दु:खित महात्मा गांधी को उन दिनों कश्मीर में ही रोशनी की किरण दिखाई दी थी यद्यपि कुछ समय पश्चात् यह प्रदेश भी धार्मिक

मदान्धता के दुष्प्रभाव से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका और कश्मीरी पण्डितों को अपने ही देश में शरणार्थी बनना पड़ा। सन् 1995 में की गई मेरी श्रीनगर यात्रा की स्मृतियां इसी ओर संकेत करती हैं। आज पुनः जम्मू कश्मीर की धरती पर धार्मिक और सांस्कृतिक समन्वय की आवश्यकता है। इसी प्रकार के विचारों से अनुप्राणित मेरे इन लेखों का संग्रह जे०के० अकादमी के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित हो रहा है यह मेरे लिए सन्तोष का विषय है। इसके लिए मैं अकादमी के अधिकारियों के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करती हूं। इसी अकादमी में मुख्य सम्पादिका रह चुकीं मेरी परम विदुषी शिष्या डा० नीरू शर्मा ने लेखों को आद्योपान्त पढ़ कर पुरोवाक् लिखने का सत्प्रयास किया है, इसके लिए वे साधुवाद, धन्यवाद और आशीर्वाद की पात्र हैं। काव्यशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् और चमत्कारसम्प्रदाय की पुनः प्रतिष्ठापना करने वाले प्रो. रामप्रताप के उपयोगी सुझावों और भावतरङ्ग लिखने के लिए उन के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हूँ। क्लासिक प्रिंटर्ज़ के प्रोप्राइटर कुलदीप शर्मा ने इस पुस्तक को बहुत सुन्दर रूप में मुद्रित किया है एतदर्थ मैं उनकी हृदय से आभारी हूँ।

अन्त में यह कहना चाहती हूँ–

गुरुजन से पा निर्मल ज्ञान शिष्यगण का होता कल्याण।
असम्भव हो जाता सम्भव है मिलता जब उनका वरदान।। 1।।

उन्होंने सम्बल दे देकर हृदय में भर दी नई उमंग।
ज्ञान झंझा से फिर मैंने बनाई तरल विचारतरङ्ग।। 2।।

वेदकुमारी घई

प्राचीन संस्कृत साहित्य में संघर्षों का समाधान

संस्कृत शब्द संघर्ष (सम्+घृष्+घञ्) का अर्थ है - टक्कर, भिड़न्त, कलह, विवाद, लड़ाई, युद्ध। मानव जाति का इतिहास संघर्षों की अविच्छिन्न श्रृंखला का इतिहास रहा है। छोटे-छोटे परिवारों और कबीलों की लड़ाइयों से लेकर बड़े-बड़े भयंकर विश्वयुद्धों की विभीषिका से यह मानवजाति कई कई बार पीड़ित और संत्रस्त होती रही है। पर हर संघर्ष की पीड़ा भोगने के पश्चात् मानव जाति ने शान्ति के वातावरण की चाह की है और भावी संघर्षों से बचने के उपाय खोजने के प्रयास भी किये हैं। महाभारत और पुराणों के अनुसार राज्यसत्ता का उदय भी ऐसे संघर्षों को मिटाने के लिए हुआ था जिनमें बलवान् आततायी निर्बलों को सताने लगे थे। महाभारत में राजदण्ड की महिमा का वर्णन करते हुए भीष्म कहते हैं कि यदि समाज में शासन का दण्डविधान न हो तो प्रजा विनष्ट हो जाएगी। बलवान् निर्बलों को ऐसे खा जाएंगे जैसे पानी में बड़ी मछली छोटी मछलियों को खा जाती है।[1]

महाभारत का युद्ध चचेरे तयेरे भाइयों कौरवों और पाण्डवों के मध्य सत्ता प्राप्ति का संघर्ष था। महायुद्ध की उस विनाश अग्नि में बड़े बड़े दिग्गज वीर, वैज्ञानिक, शिक्षक सब समाप्त हो गये।

भीषण नरसंहार और रक्तपात के बाद प्राप्त हुई विजय पर दु:खी होते हुए युधिष्ठिर को कहना पड़ा था - अपने इन सम्बन्धियों को मौत के घाट उतार कर तीनों लोकों का राज्य भी हमें खुशी नहीं दे सकता।[2] हम कुटुम्बघातियों

---

1. *राजा चेन्न भवेल्लोके पृथिव्यां दण्डधारकः।*
   जले मत्स्यान्निवाभक्षन् दुर्बलं बलवत्तराः॥
   अराजकाः प्रजाः पूर्वं विनेशुरिति नः श्रुतम्।
   परस्परं भक्षयन्तो मत्स्या इव जले कृशान्॥
   महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय 67, श्लोक 11, 7, 16
2. *महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय 7, श्लोक 8, 9, 12-19*
   त्रैलोक्यस्यापि राज्येन नास्मान् कश्चित् प्रहर्षयेत्।
   बान्धवान् निहतान् दृष्ट्वा पृथिव्यां विजयैषिणः॥ वहीं, अध्याय 7, श्लोक 8

की यह जीत नहीं हार है। कितने व्रत, उपवास, पूजा, पाठ करके माताएं सन्तान की चाह पूरी कर पाती हैं? उनकी क्या स्थिति होती है जब वे पाले पोसे जवान बच्चे युद्ध की भेंट चढ़ जाते हैं? वे रोती चिल्लाती माताएं, भाइयों की बहनें और सैनिकों की पत्नियां अपने प्रियजनों के वियोग में प्राण त्याग देती हैं। हमारे अपने नन्हे नन्हे वीर बालक अभिमन्यु, प्रतिविन्ध्य, सुतसोम, श्रुतकर्मा, शतानीक, श्रुतकीर्ति सब जवानी की दहलीज़ पर कदम रखने से पहले ही युद्ध की आग में भस्म हो गये हैं। इस सारी विनाश लीला का कारण हम ही तो हैं। हमने अनन्त पाप किया है। नरक ही हमारी ठौर है। मैं इस रक्तरंजित राजसिंहासन पर नहीं बैठ सकता। अर्जुन तुम राज्य करो, मुझे यह सब राज्य और सुख भोग छोड़कर कहीं दूर जाने दो।[3]

रामायण में संघर्ष के कई अवसर दिखाई देते हैं। बालकाण्ड में मलद और करूष जनपदों में आतंक फैलाने वाली राक्षसी ताटका का वध राम करते हैं तथा ऋषि विश्वामित्र से अनेक शस्त्रास्त्रों को ग्रहण करते हैं।[4] अरण्यकाण्ड में भी राक्षसों से आतंकित ऋषियों की रक्षा के लिए वे द्वन्द्व युद्ध में विराध का वध करते हैं ताकि वन में शान्ति स्थापित हो सके।[5]

अयोध्याकाण्ड में जब पौर-जानपदों की सहमति से दशरथ राम का राज्याभिषेक घोषित करते हैं परन्तु कैकेयी पहले दिये वचन के अनुसार दो वर मांगकर राज्याभिषेक में विघ्न डालती है तो संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। लक्ष्मण राम से कहते हैं – "जब तक यह बात लोगों तक पहुंचे उससे पहले ही आप इस राज्य को अपने अधीन कर लें। जब मैं हाथ में धनुष लेकर कृतान्त की तरह आपकी रक्षा के लिए खड़ा हूं तो किसका सामर्थ्य है जो कुछ कर सके? यदि कोई इसमें विघ्न डालेगा तो मैं सारी अयोध्या को मनुष्यहीन कर दूंगा। भरत या उसके पक्षपाती सभी का मैं वध करूंगा। यदि कैकेयी के

3. *गमिष्यामि विनिर्मुक्तो विशोको निर्ममः क्वचित्।*
प्रशाधि त्वमिमामुर्वीं क्षेमां निहतकण्टकाम्॥
न ममार्थोऽस्ति राज्येन भोगै र्वा कुरुनन्दन। वहीं, श्लोक 43-44 तथा पूर्व श्लो० संख्या 3-42

4. *रामायण, बालकाण्ड, सर्ग 26, 27, 28*

5. *वहीं, अरण्यकाण्ड, सर्ग 2, 3, 4*

द्वारा भड़काये जाने पर दुष्ट पिता हमारा शत्रु बनता है तो उसकी भी हत्या होनी चाहिए।''[6]

यदि राम अपने अधिकार की दुहाई दे कर राजसत्ता को हथिया लेते जैसी कि लक्ष्मण की इच्छा थी तो अयोध्या में गृहयुद्ध हो जाता। उन्होंने पारिवारिक कलह से बचने के लिए अयोध्या के राजसिंहासन का त्याग कर दिया। पिता के वचन और माता कैकेयी की इच्छा का सम्मान करते हुए वनगमन को सहर्ष स्वीकार किया। विमाता कैकेयी की घृणा को अपने प्यार से जीता और वही कैकेयी चित्रकूट में फूट फूट कर पश्चात्ताप से रोयी। रावण के साथ युद्ध करने से पूर्व राम ने समझौते और शान्ति के प्रयास कर लिये थे। हनुमान् और अंगद के दौत्यकर्म के निष्फल हो जाने पर तथा समन्वय, सन्धि की सभी संभावनाएं समाप्त हो जाने पर ही उन्होंने युद्ध का निश्चय किया। इस प्रकार संघर्षों का समाधान कहीं उदारता, त्यागवृत्ति और समझौते से तो कहीं दण्डविधान से होता है।

प्राचीन संस्कृत साहित्य में विशेषतः नीति ग्रन्थों में विषय भेद से तथा पात्र भेद से विभिन्न प्रकार के संघर्षों का उल्लेख मिलता है और प्राचीन संस्कृत परम्परा में इनके समाधान भी विभिन्न प्रकार से सुझाये गये हैं। आवश्यक नहीं कि वे सभी समाधान आज के युग में भी पूर्णतया सफल हों पर यह जानना लाभकर होगा कि आज देश के विभिन्न भागों में हम जिस प्रकार के राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक संघर्षों से जूझ रहे हैं क्या इन्हीं से मिलते जुलते संघर्षों और टकरावों की परिस्थितियाँ हमारे प्राचीन इतिहास में भी घटित होती रही हैं और यदि होती रही हैं तो उनके मूल कारण कौन से थे और समाधान किस प्रकार के प्रस्तुत किये जाते रहे थे? वे कौन सी प्रवृत्तियां हैं जो मानवों को बार बार लड़ाती हैं और उनका विनाश करवा देती हैं? क्या इन प्रवृत्तियों को कुछ सीमा तक बदला अथवा सुधारा जा सकता है?

पारिवारिक संघर्ष

संघर्षों की शुरुआत का सबसे छोटा परन्तु महत्त्वपूर्ण क्षेत्र परिवार रहा है। संयुक्त परिवार में युवा पीढ़ी में परस्पर तथा युवा और वृद्ध पीढ़ियों में भी धन,

---

6. रामायण, अयोध्याकाण्ड सर्ग 21, श्लोक 8-12

स्त्री तथा सत्ता के लिए संघर्ष होते रहे हैं। अग्निपुराण में पारिवारिक संघर्ष के पांच कारण बताये हैं – विमाता से उत्पन्न भाई से, भूमि पर अधिकार करने से, स्त्री से, शब्दों से अर्थात् गाली गलौच से, तथा अपकार करने से।[7] पारिवारिक शान्ति के लिए प्राचीन ऋषियों ने एक ओर तो सदस्यों की मानसिकता को सुसंस्कृत करने का प्रयास मातृदेवो भव, पितृदेवो भव जैसे निर्देशों से किया तो दूसरी ओर आश्रम व्यवस्था की मर्यादा बनाकर वृद्ध पीढ़ी को पचास की आयु के उपरान्त सत्ता अधिकार का मोह छोड़ने को प्रेरित किया।[8] वैदिक ऋषियों ने ससुराल में आई नई बहू को साम्राज्ञी कहा है। नारी को मीठा बोलने की प्रेरणा दी है तथा भाई बहनों को परस्पर द्वेष न करने को कहा है।[9]

महाभारत में भीष्म कहते हैं– बड़ा भाई पिता के समान होता है, पत्नी और पुत्र तो अपना ही शरीर हैं, सेवक अपनी छाया है, पुत्री परम दीन होने से स्नेह की पात्र है। इसलिए इन सब के साथ विवाद की बात आए भी तो उसे सहन कर लेना चाहिए, क्रुद्ध नहीं होना चाहिए।[10] पारिवारिक सौहार्द के ऐसे सूत्र प्राचीन साहित्य में स्थान स्थान पर मिलते हैं।

वर्ग संघर्ष

समाज के विभिन्न वर्गों में धन तथा अधिकार प्राप्ति के लिए संघर्ष होते रहे हैं। समाज में विभिन्न प्रकार के कार्यों के सम्पादन के लिए लोगों का

7. *अग्नि पुराण, 240, 19*
8. *गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलितमात्मनः।*
   अपत्यस्यैव चापत्यं वनमेव तदा श्रयेत्॥ महासभा० शान्तिपर्व, अ० 244, श्लोक 4
9. *अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु सम्मनाः।*
   जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्॥
   मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
   सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥ अथर्ववेद, 3.30.2-3
10. *भ्राता ज्येष्ठः समः पित्रा भार्या पुत्रः स्वका तनुः।*
   छाया स्वदासवर्गश्च दुहिता कृपणं परम्॥
   तस्मादेतैरधिक्षिप्तः सहेन्नित्यमसंज्वरः।
   गृहधर्मपरो विद्वान् धर्मशीलो जितक्लमः॥ महा भा० शान्तिपर्व, अ० 243, श्लोक 20-21

वर्गीकरण सभी देशों में होता रहा है ताकि सभी कार्य अधिक कुशलतापूर्ण ढंग से शान्तिपूर्वक सम्पन्न होते रहें। प्राचीन भारत में वर्गसंघर्षरहित वर्णव्यवस्था की रचना की गई थी जिसमें यज्ञ, अध्ययन, अध्यापन करने वाले लोग ब्राह्मण, युद्धकर्म करने वाले क्षत्रिय, व्यापार, उद्योग में संलग्न लोग वैश्य तथा शिल्पादि कर्म करने वाले लोग शूद्र कहे गये।[11] इस वर्णव्यवस्था में लचीलापन था और लोग अपनी अभिरुचि और योग्यता के आधार पर किसी भी वर्ण में सम्मिलित हो सकते थे। प्रमुख उद्देश्य यही था कि व्यक्ति निजी विकास के साथ साथ समाज के विकास में अधिक से अधिक योगदान कर सके।[12] इसमें न तो ऊंच-नीच का भाव था और न ही घृणा द्वेष के लिए अवकाश था।[13] परन्तु बाद में जब गुण कर्म पर आधारित वर्णव्यवस्था जन्म पर आधारित जातिप्रथा में परिवर्तित हो गई तो समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग शिक्षा से वंचित होकर दीनहीन और पीड़ित बन गया। लोग भूल गये कि विभिन्न वर्ग समाजरूपी शरीर के अंग हैं और इन सबकी पुष्टि से समाज रूपी शरीर पुष्ट हो सकता है।

---

11. *ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।*
ऊरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥
ऋग्वेद, 10.90.12, यजुर्वेद 31.11, अथर्ववेद 19.6.6
ब्रह्म वा इदमासीदेकमेव तदेकं सन्न व्यभवत्।
तच्छ्रेयोरूपमत्यसृजत् क्षत्रं यान्येतानि
देवत्रा क्षत्राणीन्द्रो वरुणः सोमो
रुद्रः पर्जन्यो यमो मृत्युरीशान इति।
स नैव व्यभवत्स विशमसृजत् यान्येतानि
देवजातानि गणशः प्रख्यायन्ते वसवो रुद्रा
आदित्या विश्वदेवा मरुत् इति।
स नैव व्यभवत्स शौद्रं वर्णमसृजत्
पूषणामियं वै पूषेयं हीदं सर्वं पुष्यति यदिदं किं च।
बृहदारण्यक उपनिषद्, प्रथम अध्याय, चतुर्थ ब्राह्मण कण्डिका-11,12, 13
12. *न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।*
ब्रह्मणा पूर्वं सृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम्॥
महाभारत शान्तिपर्व, अध्याय 188, श्लो० 10
13. *अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय, ऋग्वेद, 5.60.5*
यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय। यजु० 26.2

समाज के एक वर्ग के सदस्यों में भी कई कारणों से संघर्ष उत्पन्न होते हैं। कात्यायन के अनुसार इन विवादों के मूल कारण दो हैं। देयाप्रदान अर्थात् जो किसी का देय है जैसे वेतन मजदूरी शुल्क आदि, उसे न देना तथा हिंसा।[14] इन्हीं दो के मनु ने अठारह भेद बताये हैं जिन्हें व्यवहारपद कहा है। व्यवहार वि+अव+हार का अर्थ है झगड़े के बीच सत्य का उद्‌घाटन करना तथा संदेहों को दूर करना।[15] कुल, श्रेणी, पूग, गण इन आपसी झगड़ों का निपटारा करते थे।

क्षेत्रीय संघर्ष

संस्कृत साहित्य में तथा संस्कृत अभिलेखों में छोटे छोटे राज्यों के पारस्परिक संघर्षों का वर्णन भी मिलता है। इतिहास साक्षी है कि सिकन्दर के आक्रमण में पंजाब के गणराज्यों ने डटकर उसका मुकाबला किया। पौरस जब सिकन्दर से लड़ने पहुंचा और आम्भी से सहायता चाही तो उसने सहायता नहीं दी। परिणामस्वरूप पौरस को पराजय का मुंह देखना पड़ा। इस प्रकार विदेशी आक्रमण का सामना परस्पर झगड़ते हुए छोटे छोटे क्षेत्रीय राज्य नहीं कर सकते थे अतः चाणक्य ने सुदृढ केन्द्रीय सत्ता को समाधान के रूप में प्रस्तुत किया। कौटिल्य का अर्थशास्त्र इसी सुदृढ केन्द्रीय सत्ता को ध्यान में रखकर लिखा गया है। चन्द्रगुप्त मौर्य का विशाल साम्राज्य उसी आधार पर बना था। पर नीतिकारों ने इस बात का भी ध्यान रखा था कि सुदृढ केन्द्रीय सत्ता के साथ साथ विभिन्न क्षेत्रों की अपनी अपनी पहचान भी बनी रहे। गौतमधर्मसूत्रकार ने देशजातिकुलधर्माश्चाम्नायैरविरुद्धाः प्रमाणम् (11.20) कह कर सभी स्थानीय रीति रिवाज़ों तथा परम्पराओं को मान्यता दी है। अनेकता में एकता का यह सन्देश वैदिक युग से ही प्राप्त होता रहा है। अथर्ववेद का ऋषि भूमि को माता के रूप में वर्णित करते हुए कहता है-

---

14. देयाप्रदानं हिंसां च व्युत्थानद्वयमुच्यते।
कात्यायन 30, स्मृतिचन्द्रिका से उद्धृत।
धर्मशास्त्र का इतिहास भाग-3, पृ० 718

15. वि नानाऽर्थे अव सन्देहे, हरणं हारः उच्यते।
नानासन्देहहरणाद् व्यवहार इति स्मृतः॥
कात्यायन व्यवहारमयूख में उद्धृत, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-3, पृ० 706

माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:

इस भूमि पर बहुत सी बोलियों को बोलने वाले, नाना धर्मों (कर्त्तव्यों) को करने वाले लोग ऐसे रहते हैं जैसे एक घर में परिवार के भिन्न भिन्न लोग भिन्न भिन्न कार्य करते हुए पारिवारिक उन्नति करते हुए रहते हैं।[16]

क्षेत्रीय संघर्षों से बचने के लिए संस्कृत साहित्य में तीर्थों और पुण्यक्षेत्रों की अवधारणा प्रस्तुत की गई जिससे इस विशाल भारतदेश के प्रत्येक भूभाग के साथ जनता ने आत्मीयता स्थापित कर ली। देश की नदियां, पर्वत, जलाशय, कला और व्यापार के केन्द्र नगर सभी किसी न किसी देवी, देवता, ऋषि, तपस्वी, महापुरुष से सम्बद्ध होकर तीर्थ बने हैं और देश के विभिन्न क्षेत्रों के निवासी दूर दूर की तीर्थ-यात्रायें करके इनके साथ अपना धार्मिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं। आज भी स्नान के समय स्नान के घड़े में भरे जल में उत्तर और दक्षिण की नदियों की उपस्थिति की परिकल्पना की जाती है –

गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदे सिन्धो कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।

मत्स्यपुराण (अध्याय 13) तथा अन्य कुछ पुराणों में एक सौ आठ देवीपीठों का उल्लेख है। चार धामों की यात्रा की लालसा आज भी भारतीय ग्रामीण जनता में है जो संकुचित क्षेत्रीय भावना से ऊपर उठने की प्रेरणा देती है।

धार्मिक संघर्ष

धर्म के नाम पर आये दिन रक्तरंजित संघर्षों का विवरण हमें सुनने को मिलता रहता है। अतीत में भी बौद्धों, जैनों, वैदिक धर्मावलम्बियों, पौराणिकों में शैवों, वैष्णवों, शाक्तों और न जाने कितने सम्प्रदायों में टकराव होता रहा है। इस्लाम के आगमन पर यह संघर्ष और तीव्र हुए, कहीं मन्दिर तोड़े गये और कहीं मस्जिदें। जम्मू कश्मीर की भूमि पर भी धार्मिक विरोध हुए। प्राचीन भारत में इन धार्मिक विरोधों का समाधान वैदिक ऋषियों ने एकं सद् विप्रा बहुधा

---

16. जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्। अथर्ववेद XII.1.

वदन्ति[17] कहकर कर दिया था। वह परम सत्ता तो एक ही है उसी को विद्वान् लोग भिन्न भिन्न नामों से पुकारते हैं। जब हम सभी मानव उसी एक की सन्तान हैं तो फिर संघर्ष कैसा ? टकराव कैसा ? अशोक ने अपने शिलालेख में स्पष्ट निर्देश दिया है :- सवे पासंडा सवत वसेयु सवे ते संयमं भावसुधिं इछंति अर्थात् सभी धर्मावलम्बियों को सभी जगह रहना चाहिए क्योंकि वे सभी संयम और भावों की पवित्रता की चाह करते हैं। कश्मीर में महारानी सुगन्धा के समय में विभिन्न मतावलम्बियों में झगड़े प्रारम्भ हो गये थे। महारानी ने सभी विद्वानों की सभा बुलवाई और निर्णायकों ने सब के सिद्धान्त सुनकर यह निर्णय दिया कि जैसे एक विशाल भवन के कई दरवाज़े उसी भवन के भीतर पहुंचाते हैं, उसी प्रकार ये भिन्न भिन्न मत उसी एक परम तत्त्व की ओर ले जाते हैं। अतः सभी लोग कश्मीर की भूमि पर प्रेम भाव से रह सकते हैं, किसी को भी बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है।[18] इस प्रकार कश्मीर में महारानी सुगन्धा ने धार्मिक विवादों का समाधान प्रस्तुत किया है। पुराणों में पुराणकारों ने अवतारवाद की अवधारणा से भी सभी देवों को विष्णु अथवा शिव का अवतार मान कर उनका परस्पर सम्बन्ध जोड़ दिया गया है। बुद्ध भी विष्णु का अवतार हैं।

जैनधर्म के अनेकान्त के सिद्धान्त[19] ने, शांकरवेदान्त के अद्वैत ब्रह्म के सिद्धान्त ने तथा काश्मीरशैवदर्शन के शिवाद्वयवाद ने धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ा कर धार्मिक विवादों का समाधान प्रस्तुत किया।[20] इस प्रकार प्राचीन संस्कृत साहित्य में विविध प्रकार के संघर्षों और उनके समाधानों के उल्लेख हैं।

ooo

---

17. *इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो मरुत्वान्।*
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥ ऋग्वेद I. 164.46. अथर्ववेद IX. 15.28

18. *प्रवेष्टुकामा बहवः पुमांसः पुरे यथैकत्र महागृहे वा।*
द्वारान्तरेणापि विशन्ति केचित् तथोत्तमे धाम्नि मुमुक्षवोऽपि। आगमाडम्बर. IV.52
एकः शिवः पशुपतिः कपिलोऽथ विष्णुः सङ्कर्षणो जिनमुनिः सुगतो मनुर्वा।
संज्ञा : परं पृथगिमास्तनवोऽपि काममव्याकृते तु परमात्मनि नास्ति भेदः॥

19. *एको भावः सर्वथा येन दृष्टः सर्वे भावाः सर्वथा तेन दृष्टाः।*
सर्वे भावाः सर्वथा येन दृष्टाः एको भावः सर्वथा तेन दृष्टः॥
षट्दर्शनसमुच्चयटीका, पृ० 222

20. *सर्वे भावाः स्वमात्मानं जानन्तः सर्वतः स्थिताः।*
मदात्मना घटो वेत्ति वेद्म्यहं च घटात्मना॥
सदाशिवात्मना वेद्मि स वा वेत्ति मदात्मना।
शिवात्मना यज्ञदत्तो यज्ञदत्तात्मना शिवः॥
सर्वे सर्वात्मका भावाः सर्वसर्वस्वरूपतः॥ शिवदृष्टि V.105-7

ज्ञान के भण्डार वेद

वेद शब्द विद् धातु से निष्पन्न है जिस का अर्थ है जानना अर्थात् ज्ञान प्राप्त करना। भारतीय परम्परा वेद को ही धर्म का मूल स्वीकार करती है। मनु का कथन है वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। गौतम भी वेदो धर्ममूलम् कह कर वेदों को ही समस्त धार्मिक ज्ञान का स्रोत मानते हैं। आपस्तम्ब वेदों को प्रमाण मान क़र कहते हैं–प्रमाणं वेदाश्च। याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा है–

न वेदशास्त्रादन्यत्तु किञ्चिच्छास्त्रं तु विद्यते।
निःसृतं सर्वशास्त्रं तु वेदशास्त्रात्सनातनात्।।

अर्थात् वेदशास्त्र से ही सभी शास्त्र निकले हैं इस प्रकार वेद सब विद्याओं का मूल स्रोत है। सभी प्रकार के ज्ञान का भण्डार है। मनु ने वेद को सर्वज्ञानमय कहा है। यास्काचार्य ने निरुक्त के प्रथम अध्याय में ही कहा है कि अल्पज्ञ होने से मनुष्य की विद्या तो अनित्य है परन्तु नित्य परमेश्वर का ज्ञान होने से वेद सम्पूर्ण कर्मों का बोधक है। आधुनिक वैदिक विद्वान् स्वामी दयानन्द सरस्वती वेद को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक कहते हैं। उन की वेदों में विज्ञान विषयक धारणा पर टिप्पणी करते हुए आधुनिक मनीषी योगी अरविन्द लिखते हैं–दयानन्द की इस धारणा में कि वेद में धर्म और विज्ञान दोनों की सच्चाइयाँ पाई जाती हैं, कोई उपहासास्पद या कल्पनाश्रित बात नहीं है। मैं इस के साथ अपनी भी यह धारणा जोड़ना चाहता हूं कि वेदों में विज्ञान की वे सच्चाइयाँ भी हैं जिन्हें आधुनिक विज्ञान अभी तक नहीं जान पाया है। ऐसी अवस्था में दयानन्द ने वैदिक ज्ञान की गम्भीरता के सम्बन्ध में अतिशयोक्ति से नहीं अपितु न्यूनोक्ति से काम लिया है।

पश्चिमी विद्वान् मैक्समूलर वेदों को सम्पूर्ण ज्ञान का स्रोत चाहे न मानें पर वह इतना तो स्वीकार करते हैं कि "विश्व के इतिहास में वेद का वह स्थान है जो अन्य किसी भाषा का साहित्यिक ग्रन्थ प्राप्त नहीं कर सकता। जब

तक मानव की रुचि अपनी जाति के आदिम इतिहास को जानने की बनी रहेगी तब तक प्राचीन पुस्तकों की लम्बी पंक्ति में प्रथम स्थान ऋग्वेद को मिलता रहेगा।'' इस प्रकार वह ऋग्वेद को विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ मानते हैं। एक अन्य पाश्चात्य विद्वान् विन्टरनिट्ज़ के शब्दों में ''यदि हम अपनी ही संस्कृति के प्रारम्भिक दिनों की अवस्था को जानने की इच्छा रखते हों, यदि हम सब से पुरानी भारोपीय संस्कृति को समझना चाहते हों तो हमें भारत की शरण लेनी होगी जहां भारोपीय जाति का सब से पुराना साहित्य सुरक्षित है।''

इंग्लैण्ड के एक विद्वान् डब्ल्यू डी. ब्राउन ने अपनी पुस्तक Superiority of Vedic Religion में लिखा है वैदिक धर्म पूर्णतया विज्ञानसम्मत है। यहां विज्ञान और धर्म दोनों हाथ में हाथ डाल कर चलते हैं। लुई जैकालियट नामक विद्वान् The Bible of India खण्ड दो अध्याय प्रथम में लिखते हैं ''यह आश्चर्य जनक सचाई है कि केवल (हिन्दुओं का ज्ञान) वेद ही है जिस के सृष्टिरचनाविषयक सिद्धान्त आधुनिक विज्ञान की मान्यताओं के अनुरूप हैं।''

भारतीय परम्परा की दृष्टि से देखें तो हमारे सभी महत्त्वपूर्ण शास्त्र किसी न किसी रूप में वेद से जुड़े हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये छः वेदाङ्ग हैं। विज्ञान और दर्शन विषयक शास्त्र-न्याय वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदान्त और मीमांसा वेद के उपाङ्ग हैं। आरण्यक, ब्राह्मण वेद के व्याख्यान ग्रन्थ हैं। ईशोपनिषद् तो यजुर्वेद का ही चालीसवां अध्याय है। शेष उपनिषद् भी वेदज्ञान पर आधारित हैं। श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र वेदों में निर्दिष्ट यज्ञों के सम्पादन में सहायक-ग्रन्थ हैं। आयुर्वेद, धनुर्वेद, अर्थवेद और गन्धर्ववेद उपवेद माने जाते हैं।

यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय को ईशोपनिषद् कहते हैं। उस के दो मन्त्रों में विद्या और अविद्या दो प्रकार का ज्ञान बताया गया है और कहा है कि विद्या और अविद्या दोनों को जो जान लेता है वह अविद्या से मृत्यु को तर कर विद्या से अमरत्व को पा लेता है। यहां विद्या अविद्या का अर्थ वह नहीं जो आजकल प्रचलित है अपितु विद्या से तात्पर्य आध्यात्मिक ज्ञान है और अविद्या का अर्थ है भौतिक ज्ञान। वेदों में इसे परा विद्या और अपरा विद्या भी कहा है। अपरा विद्या भौतिक ज्ञान है जो परिवर्तनशील है जो घटता बढ़ता है परन्तु पराविद्या आध्यात्मिक ज्ञान है जो बदलता नहीं तथा सत्यज्ञान की कोटि में आता है। दोनों

प्रकार के ज्ञान - विद्या तथा अविद्या की अपनी-अपनी उपयोगिता है और वेदों में दोनों प्रकार का ज्ञान मिलता है यद्यपि प्रधानता विद्या या अध्यात्मविद्या की है।

वेदों में सौ अरित्रों वाले समुद्री जहाजों का (शतारित्रां नावम्), आकाश में उड़ने वाले विमानों का (दिवमुत्पतन्ति) तथा भूमि पर चलने वाले बिना घोड़ों के रथों (रथमनश्वम्) का उल्लेख है। भौतिकी, गणित, रसायन शास्त्र सभी बीज रूप में वेदों में विद्यमान हैं।

सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन कई प्रतीकों के माध्यम से वेदों में किया गया है। ऋग्वेद का नासदीय सूक्त इस विषय पर बड़े मार्मिक ढंग से प्रकाश डालता है। प्रो० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में ''वेद अनेक विद्याओं के भण्डार हैं-प्रजापतिविद्या, हिरण्यगर्भविद्या, अग्निविद्या, अज एकपाद् विद्या, वाग्विद्या, सुपर्णविद्या, पुरुषविद्या, दैवविद्या, संवत्सरविद्या, सूर्यविद्या, गायत्रीविद्या, छन्दोविद्या आदि सहस्रों विद्याओं के द्वारा वैदिक ऋषियों ने महती सृष्टिविद्या की व्याख्या की है।''

नासदीय सूक्त के प्रथम तीन मन्त्रों में प्रलयकाल की अवस्था का वर्णन है तब न सत् था न असत्, न मृत्यु न अमृत, प्रकाश अन्धकार का भेद भी नहीं था, न दिन था न रात। परमात्मा के अतिरिक्त कोई वस्तु गति में नहीं थी। जब किसी का जन्म ही नहीं हुआ था तो मृत्यु कैसे होती? सर्गकाल में जिन पदार्थों के कारण दिन रात होते हैं वे सूर्य चन्द्र नक्षत्र प्रलयकाल में नहीं थे अतः दिन रात कैसे होते? जब सूर्य की सृष्टि ही नहीं हुई थी तो प्रकाश अन्धकार का भेद कैसे होता? विश्व सलिल या समुद्र के नीचे अन्तर्लीन था। यहां सलिल से अभिप्राय सामान्य जल नहीं अपितु प्रकृति या पंचभूतों की उस अवस्था से है जिस में वह साम्यावस्था में विद्यमान रहती है। सृष्टि के मूल तत्त्व को तदेकम् कहा है। उस ने श्वास प्रश्वास की प्रक्रिया प्रारम्भ की। यह मौलिक प्राणन क्रिया किसी भौतिक तत्त्व पर आश्रित नहीं थी इसलिए इसे अवातम् कहा है। इसे ब्रह्म की स्वधा या स्वशक्ति कहा है। तीसरे मन्त्र में कहा है कि तुच्छ्य से आभु अपिहित था। यहां आभु ब्रह्म है और तुच्छ्य सीमाभाव। विश्व की रचना के लिए सीमाभाव आवश्यक है। ब्रह्म ब्रह्मतत्त्व का वह अंश

है जो तुच्छ्य से परिगृहीत हुआ। उस में उष्णता उत्पन्न हुई वही सूर्य बना। सूक्त के अन्तिम दो मन्त्रों में ऋषि ने कहा है कि इस सृष्टि के रहस्य को कौन जान पाया है और कौन कह सका है? जो इस सब का अध्यक्ष परम पद में प्रतिष्ठित है वह भी इसे जानता है या नहीं इस में सन्देह है। यह है भारतीय ज्ञान की चुनौती जिस की सत्यता को आज का विज्ञान खण्डित नहीं कर सका। विद्वद्वर मेटरलिंक ने अपनी पुस्तक The Great Secret में स्पष्ट कह दिया है– "नासदीय सूक्त के कर्ता ने जिस जिज्ञासा और प्रश्न के मार्ग में हम कभी पहुंच सकेंगे, उस से भी आगे बढ़ कर, निराशा और अश्रद्धा से हमारी रक्षा करने के लिए पहले ही कह दिया है। जो परम व्योम में इस का अध्यक्ष है पता नहीं वह भी जानता है या नहीं?"

क्यों ? कैसे ? और किस में ? ये महान् तीन प्रश्न आज भी विज्ञान के द्वारा अनुत्तरित हैं। आधुनिक विज्ञान सूक्ष्म से सूक्ष्मतर की खोज करते हुए परमाणु तक पहुंचा है। अब आगे बढ़ते हुए परमाणु को प्रोटोन, इलेक्ट्रान और न्यूट्रान का संघात माना जाता है। भारतीय दर्शन इस से आगे तन्मात्र तत्त्व की भी चर्चा करता है और उस से सूक्ष्म महत् की भी। उदाहरण के लिए एक स्वर्ण कण को लें, उस के सूक्ष्मातिसूक्ष्म कण में जब तक उस के स्वर्ण होने की प्रतीति होगी तब तक वह परमाणु संज्ञक होगा। जब विश्लेषण करते करते वह कण उस अवस्था में पहुंच जाएगा जहां उस के अवयवों में स्वर्ण की प्रतीति नहीं रहेगी तब उस की कार्यगत विशेषता समाप्त समझी जाएगी। तत्त्व की वह अवस्था तन्मात्र है। तन्मात्र से सूक्ष्म है अहंकार और उस के आगे का तत्त्व महत् है जो प्रकृति से विकृति की अवस्था का प्रथम परिणाम या विकार है। यह परिणाम तब तक सम्भव नहीं जब तक नियन्ता चेतन ब्रह्म उसे प्रवृत्ति के लिए प्रेरित न करे इसलिए नासदीय सूक्त की चतुर्थ ऋचा में उस चेतन के संकल्प अथवा प्रेरणा को सृष्टि का प्रथम अर्थात् मुख्य कारण कहा है–

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा।।

अस्यवामीय सूक्त, हिरण्यगर्भ सूक्त, अघमर्षण सूक्त में भी सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन है।

इस प्रकार यह कथन उचित है कि वेद विविध ज्ञान विज्ञान के भण्डार हैं।

सृष्टि विद्या की भांति वेद के ज्ञान भण्डार में प्राणविद्या या योगविद्या का विस्तृत विवरण है। अथर्ववेद के ग्यारहवें काण्ड का चौथा सूक्त प्राणसूक्त है जिस के छब्बीस मन्त्रों में प्राण की ही महिमा गाई गई है। प्राण के अधीन सारा विश्व है। औषधियों वनस्पतियों में जो शक्ति है वह प्राण के द्वारा ही दी गई है। इस सूक्त के सातवें आठवें मन्त्रों में प्राणायाम की ओर स्पष्ट संकेत है। इन में कहा है ''आने वाले (आयते) और जाने वाले (परायते) प्राण को नमस्कार है। स्थिर रहने वाले (तिष्ठते) और बैठने वाले (आसीनाय) प्राण को नमस्कार है। प्राण और अपान के लिए, आगे बढ़ने वाले और पीछे हटने वाले प्राण के लिए नमस्कार है। शरीर में प्राण की दो शक्तियां विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं- प्राण तथा अपान। प्राण शक्ति प्राणायाम के द्वारा श्वास के माध्यम से प्राणपद वायु को फेफड़ों में पहुंचाती है तथा निःश्वास के द्वारा अशुद्ध दूषित वायु को बाहर निकाल देती है। अपान वायु शरीर से दूषित तत्त्वों को मलमूत्र के द्वारा बाहर निकालती है और शरीर को शुद्ध रखती है। श्वास और निःश्वास से प्राणों का भीतर जाना और बाहर आना होता है। मन्त्र में आयत् और परायत् शब्दों से प्राणायाम के पूरक और रेचक का बोध होता है। अन्दर जाने वाला प्राण आयत् है, बाहर निकलने वाला परायत् है। आने जाने की गति को कुछ समय बन्द कर जब प्राण को अन्दर स्थिर करते हैं तो उसे तिष्ठत् प्राण कहते हैं, यही कुम्भक या अन्तः कुम्भक है। जब रेचक द्वारा प्राण को बाहर फेंक कर कुछ समय बाहर रोकते हैं तो उसे आसीन प्राण कहते हैं। यह बाह्य कुम्भक प्राणायाम कहलाता है। इन चार प्रकार के प्राणायामों के अभ्यास से शरीर को रोगों से सदा के लिए मुक्त रखा जा सकता है। शरीर के कण कण में प्राण का वास है, जहां प्राण नहीं वह अंग निर्जीव हो जाता है इसीलिए वेदों में प्राण को सर्वस्व कहा है। सूक्त के नौवें मन्त्र में प्राणमय शरीर का वर्णन है। कहा है- ''हे प्राण! जो तुम्हारा प्रिय शरीर है जो तुम्हारे प्रिय भाग प्राण अपान हैं तथा जो तुम्हारी औषधि है, उसे हमारे जीवन के लिए हमें प्रदान करो।'' प्राण से शक्ति की वृद्धि और अपान से दोषों का, विष तत्त्व का बाहर निकलना ये दोनों प्राणमय शरीर की दीर्घायु के लिए आवश्यक हैं। दोषों को शान्त करने वाली शक्ति का नाम ही भेषज

है इसलिए प्राण में भेषज है यह भी कहा है। वस्तुतः प्राण ही सब औषधियों की औषधि है। प्राणशक्ति के मन्द पड़ जाने पर कोई दवा काम नहीं करती। एक मन्त्र में यह भी कहा है कि जब प्राण शक्ति प्रदान करता है तभी आथर्वणी, आंगिरसी, दैवी और मानुषी औषधियां या चिकित्साएं फलीभूत होती हैं। इस मन्त्र में चार प्रकार की चिकित्सा का उल्लेख है-

1. औषधियों के द्वारा की जाने वाली अथर्वा ऋषि के द्वारा संचालित चिकित्सा आथर्वणी चिकित्सा है।

2. अंगों में विद्यमान रस के द्वारा की जाने वाली अंगिरा ऋषि के द्वारा संचालित मानसिक एकाग्रता से की जाने वाली आंगिरसी चिकित्सा है।

3. पंच भूतों अप्, तेज, वायु, आकाश और पृथ्वी के द्वारा की जाने वाली दैवी चिकित्सा है जिसे अब प्राकृतिक चिकित्सा कहते हैं। इस में मिट्टी, पानी, अग्नि, सूर्य, वायु, उपवास आदि से चिकित्सा होती है।

4. मनुष्यों के द्वारा बनाई गई औषधियों के द्वारा की जाने वाली मानुषी चिकित्सा है।

पर ये सभी चिकित्साएं तभी फलीभूत होती हैं जब प्राणशक्ति की रक्षा प्राणायाम के द्वारा की जाती है। 22वें मन्त्र में प्राण को अष्टाचक्र एकनेमि और सहस्राक्षर कहा है। इसी अथर्ववेद के दशम काण्ड के दूसरे सूक्त के 31 वें मन्त्र में अष्टचक्रा नवद्वारा देह का वर्णन है जिस में एक हिरण्यमय सुनहला कोश मस्तिष्क है। ये आठ चक्र हैं- मेरुदण्ड की समाप्ति के पास मूलाधार चक्र, उस के ऊपर स्वाधिष्ठान चक्र, नाभिस्थान में मणिपूरक चक्र, वक्षःस्थल में अनाहत चक्र, कण्ठप्रदेश में विशुद्धिचक्र, जिह्वामूल में ललना चक्र, भ्रूमध्य में आज्ञा चक्र तथा मस्तिष्क ब्रह्मरन्ध्र में सहस्रार चक्र। प्रत्येक चक्र में प्राण पहुंचने पर वहां से अद्‌भुत शक्ति का संचार होता है। इस देह रूप अयोध्या नगरी की दो आंखें, दो नासिका छिद्र, दो कान, मुख, मलद्वार तथा उपस्थ ये नौ द्वार हैं। जो व्यक्ति प्राण संरक्षण से इन आठ चक्रों को वश में कर लेता है और इन नौ द्वारों का भी ध्यान रखता है वह शारीरिक और आत्मिक बल को प्राप्त कर लेता है।

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती (पूर्व प्रिंसीपल लक्ष्मीदत्त दीक्षित) अपनी पुस्तक दिव्यज्ञान की भूमिका में लिखते हैं–"रक्त संचार (Blood circulation) के सिद्धान्त का पता यूरोप में डा. हार्वे को भले ही सत्रहवीं शताब्दी में चला हो परन्तु अथर्ववेद में इस का स्पष्ट तथा चमत्कारपूर्ण वर्णन उपलब्ध है (अ.वे.1.17.1. तथा 10.2.11) जहां धमनियों में अरुण अर्थात् शुद्ध लाल रंग वाले तथा शिराओं (veins) में धूम्रवर्ण वाले अशुद्ध रक्त के शरीर में सर्वत्र नदी के प्रवाह के समान संचरण करने का वर्णन है। शतपथ ब्राह्मण में हृदय शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा है कि यह हृ हरति, द ददाति तथा य याति से बना है अर्थात् लेता है देता है और गति करता है। हृदय शरीर से अशुद्ध रक्त को लेता है फेफड़ों द्वारा शुद्ध कर के शरीर को देता है तथा इस उद्देश्य से निरन्तर गति करता है। इस प्रकार हृदय शब्द से ही रक्त संचरण का सिद्धान्त स्पष्ट है।" वह डा. वी जी रैले की पुस्तक The Vedic Gods से यह उद्धरण देते हैं जिस में डा. रैले लिखते हैं "हमारा आज कल का नाड़ी संस्थान की रचना सम्बन्धी ज्ञान ऋग्वेद के वर्णनों से इतना मेल खाता है कि कई बार मन में प्रश्न उठता है कि क्या वेद वास्तव में धर्मग्रन्थ हैं या वे शरीरविज्ञान और नाडीसंस्थान के रचना विषयक ग्रन्थ हैं जिन्हें पूरी तरह जाने बिना मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक विचारों को ठीक ठीक नहीं समझा जा सकता।"

अथर्ववेद के सैंकड़ों सूक्त आयुर्वेद से सम्बद्ध हैं जिन में शरीर के अंग प्रत्यंगों के नाम, रोगों के नाम, कृमियों का विस्तृत वर्णन, औषधियों के नाम तथा चिकित्सा की विविध विधियों का वर्णन है।

मनोविज्ञान के क्षेत्र में ऋग्वेद में मनस् शब्द का प्रयोग लगभग अढाई सौ बार हुआ है। यजुर्वेद के 34 वें अध्याय का शिवसङ्कल्प सूक्त इस मनस् तत्त्व का जैसा वैज्ञानिक तथा व्यावहारिक विवरण देता है वैसा विश्व साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। इस मन को ज्योतियों की ज्योति कहा है। यह मन जागते हुए तथा सोते हुए भी दूर दूर जाता है। जैसे जाग्रत् अवस्था में इन्द्रियों की सहायता से कार्य करता है वैसे ही स्वप्नावस्था में भी आन्तर इन्द्रियों से कार्य करता है।

यह मन इतनी तीव्र गति से इधर उधर आता जाता है कि इस के क्रम को पकड़ना भी सम्भव नहीं होता। इस मन की शक्ति का अनुमान नहीं लगाया

जा सकता। यह ज्ञान का भण्डार है, यह स्मृति का साधन है, यह भीतर की अमर ज्योति है। इस के बिना कोई भी कार्य नहीं किया जा सकता। इसी मन ने भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान इन सब को मानों पकड़ रखा है। इसी की सहायता से सातों होता (इन्द्रियां) जीवन यज्ञ का विस्तार करते हैं। यह मन हृदय में प्रतिष्ठित है, कभी बूढ़ा नहीं होता। जैसे अच्छा सारथि लगामों की सहायता से वेग वाले घोड़ों को अभीष्ट स्थान पर ले जाता है वैसे ही मन मनुष्यों को विचार क्षेत्र में ले जाता है। मन्त्रों में बार बार यह प्रार्थना की गई है कि मेरे मन के संकल्प शुभ हों ताकि वह मन सुसारथि होकर मुझे जीवन यात्रा करा सके।

वेदों में अध्यात्म ज्ञान का भण्डार तो है ही। यहाँ प्रमुख विचारबिन्दु यही है कि हम सब जीव एक ही परम सत्ता के अधीन हैं। उस एक ही परम सत्ता को विद्वान् भिन्न 2 नामों से पुकारते हैं। एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति। कोई इसे अग्नि कहता है, कोई यम, कोई वायु, कोई ब्रह्म और कोई प्रजापति। वही अर्यमा है, वही वरुण है, वही रुद्र है, वही सूर्य है। इस प्रकार जब एक ही परम सत्ता को अलग अलग नामों से पुकारा जाता है तो फिर धार्मिक झगड़ों का अवसर कहां? विश्व में धार्मिक समन्वय के लिए इस से बढ़ कर एकता-सूत्र क्या हो सकता है ?

पारिवारिक और सामाजिक क्षेत्र में सौहार्द के लिए अनेक विचार बिन्दु वेदों में मिलते हैं। अनुव्रतः पितुः पुत्रः मात्रा भवतु संमनाः। जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्॥ पुत्र पिता के व्रत का अनुसरण करने वाला हो माता के मन की बात समझने वाला हो, पत्नी पति से मीठी वाणी बोलने वाली हो। भाई भाई से द्वेष न करे, बहन बहन से द्वेष न करे। सभी प्रेम भाव से सुख भोगते हुए जीवन बिताएं। ऐसी ज्ञानसूक्तियां पारिवारिक सौहार्द के लिए कितनी सार्थक हैं!

सामाजिक और राजनैतिक स्तर पर किसी भी राष्ट्र की उन्नति का सूत्र ऋग्वेद का अन्तिम सूक्त है जिस में राष्ट्रवासियों को मिल कर चलने की, मिल कर शालीनता के साथ बातचीत करने की तथा परस्पर एक दूसरे के मन को समझने की आज्ञा दी गई है। समाज या राष्ट्र तभी विकास के पथ पर आगे

बढ़ता है जब समाज के नेता इकट्ठे हो कर एक दूसरे के साथ सलाह मशवरा कर के सब के भले के लिए कार्यक्रम बनायें। जब वे सहचित्त हों अर्थात् एक दूसरे के दृष्टिकोण को समझने की कोशिश करें, एक दूसरे के सामने दिल खोल सकें, एक दूसरे पर विश्वास कर पायें। समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्। में यही ज्ञानभरा सन्देश है।

विश्वशान्ति का मूलमन्त्र यजुर्वेद की यह उक्ति है

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।।
यजु० 36.18

सारी दुनिया के लोग मुझे मित्र की निगाह से देखें और मैं भी सारी दुनिया को मित्र की निगाह से देखूं। विश्वमैत्री की यह दृष्टि वैदिक संस्कृति की प्रमुख विशेषता है। इस प्रकार वेद लौकिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार के ज्ञान के भण्डार हैं।

ooo

हर्ष की नाट्यकृतियों में तत्कालीन संस्कृति

प्राचीन संस्कृत साहित्य के इतिहास में प्राय: संस्कृत लेखकों की जन्मतिथि, जन्मस्थान, जीवन सम्बन्धी घटनायें विवाद का विषय रही हैं परन्तु रत्नावली, प्रियदर्शिका नाटिकाओं और नागानन्द नाटक के रचयिता स्थानेश्वर राज्य के शासक श्री हर्षदेव इस विषय में अपवाद हैं। उन के जीवन काल तथा शासन के विषय में प्रचुर सामग्री बाण के हर्षचरित, चीनी यात्रियों हयून्त्सांग और इत्सिङ्ग के यात्राविवरणों, हर्ष के अपने अभिलेखों तथा समकालीन अन्य राजाओं के अभिलेखों के रूप में प्राप्त होती है।

नवम शताब्दी में हुए ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन ने रत्नावली का उल्लेख किया है तथा आठवीं शताब्दी में हुए धनञ्जय ने दशरूपक में रत्नावली नाटिका से कई श्लोक तथा गद्यांश उद्धृत किये हैं। इस से स्पष्ट है कि रत्नावली के रचयिता श्री हर्ष न तो कश्मीर के राजा श्रीहर्ष थे जिनका समय 1089-1101 ईस्वी था और न ही धारानगरी के राजा भोज के दादा श्रीहर्ष जिनका समय दशम शताब्दी था। इस नाटिका के प्रणेता तो सप्तम शताब्दी में हुए स्थानेश्वराधिपति श्रीहर्ष ही हैं, जिनके राज्य में प्रसिद्ध गद्यलेखक बाण तथा प्रसिद्ध कवि मयूर भी हुए। रत्नावली, प्रियदर्शिका तथा नागानन्द इन तीनों कृतियों की प्रस्तावना एक सी है तथा तीनों की प्रस्तावना में श्रीहर्षदेव को रचनाकार कहा गया है। तीनों कृतियों की भाषा शैली समान है जिस से स्पष्ट है कि तीनों का लेखक एक ही है। मैक्डानल का यह कथन उचित प्रतीत नहीं होता कि नागानन्द के मंगलाचरण में बुद्ध की स्तुति की गई है अत: इस का रचयिता कोई बौद्ध है और रत्नावली और प्रियदर्शिका में शिव तथा गौरी की स्तुति हुई है अत: उनका रचयिता कोई हिन्दु है।'' वस्तुत: गुप्तवंश के कई राजाओं की तरह हर्ष उदार तथा धार्मिक सहिष्णु था। बांसखेरा और मधुबन के उत्कीर्ण अभिलेखों में उसे परममाहेश्वर कहा गया है। प्रयाग में जब उस ने धार्मिक अनुष्ठान किया था

तो बौद्ध देवी देवताओं के साथ साथ सूर्य और शिव की भी पूजा की थी तथा बौद्ध भिक्षुओं के साथ साथ ब्राह्मण पण्डितों को भी दान दक्षिणा दी थी। वह सभी धर्मों का आदर करता था। हो सकता है शुरु में उस का झुकाव पौराणिक हिन्दुधर्म के प्रति अधिक रहा परन्तु बाद में ह्यून्त्सांग के सम्पर्क में आकर उस की अभिरुचि बौद्धधर्म के प्रति अधिक हो गई। श्रीहर्ष की मृत्यु के बाद भारत की यात्रा पर आये चीनी यात्री इत्सिङ्ग ने लिखा है कि राजा शीलादित्य (हर्ष) ने बुद्ध के पूर्व जन्म के अवतार जीमूतवाहन की कथा को लिखकर उस का अभिनय करवाया था। इस वर्णन से भी सिद्ध होता है कि स्थानेश्वर के राजा श्रीहर्ष ही इन तीनों रूपकों के रचयिता थे तथा हिन्दुधर्म और बौद्ध धर्म दोनों के प्रति उन का आदर भाव था। बांसखेरा अभिलेख में हर्ष की व्यक्तिगत विशेषताओं का उल्लेख इस प्रकार हुआ है – परममाहेश्वरो महेश्वर इव सर्वसत्त्वानुकम्पी परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीहर्षः–स्वहस्तो मम महाराजाधिराजश्रीहर्षस्य।

हर्षवर्धन के समय की राजनैतिक परिस्थितियां

श्रीहर्ष के युग की संस्कृति का अवलोकन करने से पूर्व तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का अवलोकन भी आवश्यक है। गुप्तवंश के सम्राट् स्कन्दगुप्त के समय में भारत पर हूणों के आक्रमण शुरु हो गये थे जिन्हें रोकने में वह तो समर्थ हुआ परन्तु उस के निर्बल उत्तराधिकारी उन्हें रोकने में असफल रहे। इस अव्यवस्था के परिणामस्वरूप गुप्त सम्राटों की अधीनता में अपने अपने क्षेत्रों में शासन करने वाले अनेक सामन्त राजाओं ने अपने स्वतन्त्र पृथक् राज्यों की स्थापना कर ली। उन में ये प्रमुख राजवंश हुए–

1. कन्नौज का मौखरिवंश
2. स्थानेश्वर का वर्धनवंश तथा
3. वल्लभी का मैत्रकवंश

इन राजवंशों के स्वतन्त्र हो जाने पर भी मगध तथा उसके समीपवर्ती प्रदेशों में गुप्त राजा शासन करते रहे परन्तु हूणों की शक्ति का सामना करने का मुख्य उत्तरदायित्व इन राजवंशों पर ही आ पड़ा। कुमारगुप्त तृतीय के समय तक

बंगाल गुप्त साम्राज्य के अधीन रहा पर बाद में गुप्तवंश के ही एक पराक्रमी सामंत नरेन्द्रगुप्त शशांक ने अपने स्वतन्त्र राज्य की स्थापना कर ली। मालवा में यशोवर्मा ने अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया। इन परिस्थितियों में गुप्त साम्राज्य के एक सामंत नरवर्धन ने स्थानेश्वर में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना कर ली। उस के पश्चात् आदित्यवर्धन हुआ जिस का विवाह गुप्तवंश की राजकुमारी महासेनगुप्ता से हुआ। उस के पश्चात् प्रभाकरवर्धन, राज्यवर्धन तथा हर्षवर्धन हुए। राज्यवर्धन तथा हर्षवर्धन की बहन राज्यश्री का विवाह मौखरि वंश के राजा ग्रहवर्मा के साथ हुआ जिस से कन्नौज और स्थानेश्वर के राज्यों में घनिष्ठ मित्रता हो गई। इन दो राज्यों की बढ़ती शक्ति को सहन न करते हुए मालवा के शासक देवगुप्त और गौड़देश के शासक शशांक ने मिल कर कन्नौज पर आक्रमण कर दिया। मौखरि राजा ग्रहवर्मा की युद्ध में मृत्यु हो गई और राज्यश्री को कारागार में बन्दी बना दिया गया। राज्यवर्धन ने जो अभी हूणों का मुकाबला कर के कश्मीर से लौटा था बहनोई की मृत्यु का बदला लेने मालवराज देवगुप्त पर हमला कर उसे परास्त कर बहन को कारागार से छुड़ाया। फिर उस ने शशांक की ओर मुख किया। शशांक ने संदेश भेजा कि मैं सन्धि करना चाहता हूं और अपनी बेटी का विवाह राज्यवर्धन से करना चाहता हूं। जब राज्यवर्धन सन्धि की शर्तें तय करने उस के पास गये तो षड्यन्त्र के अन्तर्गत राज्यवर्धन की हत्या कर दी गई। राज्यश्री ने जंगल में जाकर चिताप्रवेश की योजना बना ली थी। हर्षवर्धन ने बहन को ढूंढ निकाला और उसे समझाया कि शत्रु के डर से आत्महत्या करना कायरता है तथा कन्नौज की गद्दी संभाल कर शत्रु से बदला लेना प्रथम कर्तव्य है। राज्यश्री भाई का आश्वासन पा कर कन्नौज लौट आई। बहन के प्रतिनिधि के रूप में हर्ष ने कन्नौज का राज्य भार भी संभाला। कन्नौज और स्थानेश्वर की सम्मिलित शक्ति से उस ने शशांक के साथ पूरे छः वर्षों तक युद्ध किया। आसाम के राजा भास्करवर्मा की सहायता भी उस ने ली पर अन्त में सन्धि हुई और शशांक को बंगाल का स्वतन्त्र शासक स्वीकार कर लिया गया। पाटलिपुत्र के शासक महासेन गुप्त का पुत्र माधवगुप्त श्रीहर्ष का मित्र था। उस समय गुप्त साम्राज्य से अधिक शक्तिशाली हर्ष का साम्राज्य था। हर्ष ने वल्लभी के राजा ध्रुवसेन द्वितीय पर आक्रमण कर उसे परास्त किया था परन्तु उस के राज्य को अपने साम्राज्य में सम्मिलित नहीं किया। ध्रुवसेन के साथ स्थिर मैत्री बनाए रखने को हर्षवर्धन ने अपनी पुत्री का विवाह उस

के साथ कर दिया था। सिन्ध के राजा के विरुद्ध भी अभियान कर हर्ष ने उसे हराया था। बाणभट्ट के अनुसार हर्ष ने युद्ध में विजय प्राप्त कर सिन्धुराज की लक्ष्मी को स्वायत्त कर लिया था। चीनी अनुश्रुति के अनुसार हर्ष को मगधराज कहा है। सम्भव है कि गुप्तवंशी राजा माधवगुप्त जो हर्ष का परममित्र था, हर्ष का आधिपत्य भी स्वीकार करता हो। बांसखेरा और मधुवन से प्राप्त अभिलेखों से अहिच्छत्र (बरेली) और श्रावस्ती का उस के राज्य में होना प्रमाणित होता है। इस प्रकार उत्तर भारत का अधिकांश भाग हर्ष की अधीनता में था। बाणभट्ट का उसे सकलोत्तरापथनाथ कहना उचित ही प्रतीत होता है।

हर्ष की दोनों नाटिकाओं और नाटक नागानन्द में सूत्रधार की उक्ति है– अद्याहमिन्द्रोत्सवे (नाटिकाओं में वसन्तोत्सवे) सबहुमानमाहूय नानादिग्देशागतेन राज्ञः श्रीहर्षदेवस्य पादपद्मोपजीविना राजसमूहेनोक्तः– ''यदस्मत्स्वामिना श्रीहर्षदेवेनापूर्ववस्तुरचनालंकृतं विद्याधरजातकप्रतिबद्धं नागानन्दं नाम नाटकं कृतमित्यस्माभिः श्रोत्रपरम्परया श्रुतं न तु प्रयोगतो दृष्टम्'' (अपूर्ववस्तुरचनालंकृता रत्नावली नाम नाटिका कृता[1]। अपूर्ववस्तुरचनालंकृता प्रियदर्शिका नाम नाटिका कृता) इस उक्ति से ज्ञात होता है कि हर्ष के अधीन कई राजा थे जो विशेष अवसरों पर उस की राजसभा में उपस्थित होते थे। रत्नावली नाटिका में भी उदयन महाराज के चरणों की आराधना की प्रतीक्षा में सभाभवन में आते हुए राजाओं के समूह का उल्लेख है।[2] यहां हर्ष की राजसभा की ओर संकेत भी सम्भव है।

हर्ष की कृतियों में तत्कालीन संस्कृति

संस्कृति शब्द सम् उपसर्ग युक्त कृञ् धातु के साथ क्तिन् प्रत्यय लग कर बना है जिस का अर्थ है शुद्ध करना, सजाना, संवारना। मनुष्य सदैव सौन्दर्य और पूर्णता की ओर बढ़ना चाहता है अतः वे सब विचार और क्रियाकलाप जो उसे सौन्दर्य और पूर्णता की ओर ले जाते हैं संस्कृति की परिभाषा में आ जाते हैं । किसी भी देश और काल की संस्कृति अपने को धर्म, दर्शन, कविता, संगीत, कला आदि के माध्यम से अभिव्यक्त करती है। वैयक्तिक और सामूहिक जीवन को सरस, सुन्दर और सुखी बनाने के लिए मानव ने जो भी

---

1. प्रस्तावना में नान्द्यन्ते के पश्चात्

2. रत्नावली I. 23

चिन्तन किया और जिन पदार्थों, प्रथाओं और संस्थाओं को विकसित किया उन सब को हम संस्कृति कहते हैं। जीवन का अनुकरण ही नाटक होता है अतः नाट्यकृतियों में संस्कृति के दर्शन अवश्य होते हैं।

वर्णव्यवस्था

प्राचीन काल में वर्ण व्यवस्था में जो लचीलापन था वह उस मध्यकाल में लुप्त हो गया था। सिद्धान्त रूप से तो ब्राह्मणों का कार्य अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान देना और दान लेना माना गया है। परन्तु इन नाटक नाटिकाओं का विदूषक वेदवेदाङ्गपारग नहीं है। रत्नावली नाटिका में वह गाथा गाती हुई सारिका के विषय में कहता है – यह दासीपुत्री सारिका चतुर्वेदी ब्राह्मण की तरह ऋचाएं पढ़ने लगी है। विदूषक के ऋचा सम्बन्धी अज्ञान पर व्यंग्य करते हुए उदयन कहते हैं – मित्र! साधु! आप महाब्राह्मण के अतिरिक्त कौन दूसरा ऐसी ऋचाओं का ज्ञाता हो सकता है ?[1] इस उक्ति से तथा प्रियदर्शिका के उल्लेख से यह तो प्रमाणित होता है कि वेदवेदाङ्गों के ज्ञान के आधार पर ब्राह्मणों की त्रिवेदी, चतुर्वेदी आदि श्रेणियां बन चुकी थीं।[2] उपवासादि के अवसर पर ब्राह्मणों को दान देने की प्रथा थी। वासवदत्ता विदूषक को विलेपन कुसुम तथा आभरण देते हुए कहती है- आर्य स्वस्तिवायनं प्रतीच्छ। ब्राह्मण यज्ञोपवीत धारण करते थे। विदूषक रत्नावली में यज्ञोपवीत (ब्रह्मसूत्र) की शपथ लेता है।

समाज के दूसरे क्षत्रिय वर्ण का प्रमुख कर्तव्य रक्षा करना कहा गया है। दोनों नाटिकाओं का नायक उदयन क्षत्रिय है जो स्वयं अपने विषय में कहता है–राज्य के सारे शत्रु जीते जा चुके हैं। योग्य मन्त्री पर राज्यपालन का भार डाल दिया है। प्रजाओं का भली भांति लालन पालन किया जा रहा है। उन के सभी कष्ट और उपद्रव शान्त हैं।[3] हर्ष के काल में क्षत्रियों का युद्ध कार्य तो चलता ही था क्योंकि छोटे छोटे राज्यों में परस्पर स्पर्धा और युद्ध होते रहते थे। दोनों नाटिकाओं में युद्ध का वर्णन मिलता है। रत्नावली में विजयवर्मा ने

---

1. *रत्नावली II. 7 के पूर्व तथा पश्चात् का गद्य भाग*
2. *प्रियदर्शिका I पृ. 22 भो ईदृशः खलु ब्राह्मणः यश्चतुर्वेदपंचवेदषड्वेद-ब्राह्मणसहस्रपर्याकुले राजकुले प्रथममहमेव देवीसकाशात्स्वस्तिवायनं लभे।*
3. *राज्यं निर्जितशत्रु योग्यसचिवे न्यस्तः समस्तो भरः*
   सम्यक्पालनलालिताः प्रशमिताशेषोपसर्गाः प्रजाः।
   रत्नावली 1,9

रुमण्वान् द्वारा कोसलनरेश पर प्राप्त विजय का ब्यौरा चतुर्थ अंक के दो पद्यों में विस्तार से दिया है।[1] राजा हर्ष की विजयों का वर्णन बाण के हर्षचरित में तथा श्री हर्ष के अभिलेखों में मिलता है। ह्यून्त्सांग के अनुसार उस की सेना में साठ हज़ार हाथी और एक लाख अश्वारोही सैनिक थे।[2]

क्षत्रिय राजाओं का चारित्रिक पतन भी इन नाटिकाओं में दिखाई देता है। नागानन्द का नायक जीमूतवाहन तो त्याग और मर्यादा की मूर्ति है परन्तु उदयन हर्षयुगीन सामन्ती युग का ही प्रतिनिधि है। पतिव्रता पत्नी वासवदत्ता के होते हुए भी वह रत्नावली (प्रियदर्शिका) पर आसक्त होता है। जिस देश में मातृवत् परदारेषु की परम्परा रही है वहां नायक राजा का यह चारित्रिकपतन ही कहा जा सकता है। प्रतीत होता है कि उस काल में धनिक वर्ग अथवा सत्ताधारी राजाओं के लिए बहुपत्नीत्व सहज अधिकार बन गया था। राजनैतिक सम्बन्ध बनाने के लिए भी दूसरा तीसरा पाणिग्रहण समाज में स्वीकार्य था। परभार्यादर्शन सदोष, अविवाहिता का दर्शन निर्दोष माना जाता था।[3]

वैश्य – रत्नावली नाटिका में सिंहलदेश से लौटते हुए कौशाम्बीवासी व्यापारी का उल्लेख है जिस ने समुद्री जहाज के भंग हो जाने पर लकड़ी के तख्ते का सहारा पा कर तैरती हुई रत्नावली को बचाया था और उसे उदयन के अमात्य यौगन्धरायण को सौंप दिया था।

शिल्पी – व्यापारी वर्ग के अतिरिक्त वस्त्र बनाने वाले जुलाहे, वस्त्र रंगने वाले रंगरेज, स्वर्णाभूषण बनाने वाले स्वर्णकार, चित्र बनाने वाले चित्रकार, मूर्तियां बनाने वाले मूर्तिकार, दीवारें पोतने वाले कारीगर, माला बनाने वाले मालाकार, बर्तन बनाने वाले कुम्भकार आदि अनेक शिल्पी थे जिन का वर्णन बाण के हर्षचरित में हुआ है। इन में कुछ को वैश्यवर्ण के अन्तर्गत रखा जाता होगा कुछ को शूद्रवर्ण के अन्तर्गत। दासीपुत्र शब्द का उल्लेख रत्नावली में हुआ है। किरातों की गणना भी शूद्रों में की जाती थी।

---

1. *रत्नावली IV. 5-6 प्रियदर्शिका IV*
2. *सत्यकेतु विद्यालंकारकृत*
   भारत का प्राचीन इतिहास पृ. 814
3. *वयस्य, निर्दोषदर्शना कन्यका खल्वियम् प्रियदर्शिका II*
   को दोषः? निर्दोषदर्शना हि कन्यका भवन्ति। नागानन्द I

आश्रमव्यवस्था

इन कृतियों में संन्यास आश्रम का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। नागानन्द की प्रस्तावना में नटी सूत्रधार को सूचित करती है कि उस के माता पिता अपनी वृद्धावस्था जान कर और यह सोच कर कि बेटा बहू कुटुम्ब का भार उठाने योग्य हो गये हैं, तपोवन को चले गये हैं। यहां स्पष्ट रूप से वानप्रस्थ आश्रम की ओर संकेत है। जीमूतवाहन के माता पिता ने भी वानप्रस्थ में प्रवेश कर लिया है। गृहस्थाश्रम का वर्णन तो सभी रूपकों में है। गृहस्थाश्रम का एक कर्तव्य अतिथि सत्कार है जिस का वर्णन रत्नावली के चतुर्थ अंक में वसुभूति के आगमन पर मिलता है। वासवदत्ता और उदयन ऐन्द्रजालिक की जादूगिरी देख रहे हैं। तभी सन्देश मिलता है कि विक्रमबाहु के प्रधानामात्य वसुभूति बाभ्रव्य कंचुकी के साथ आये हैं तथा महाराज के दर्शन करना चाहते हैं। वासवदत्ता और उदयन उसी समय ऐन्द्रजालिक को पारितोषिक देकर विश्राम करने को कहते हैं तथा उदयन वसन्तक को आदेश देते हैं कि स्वागत कर के वसुभूति को भीतर ले आओ।[1]

अतिथि सेवा के प्रमुख तीन अङ्गों का वर्णन नागानन्द नाटक के प्रथम अङ्क में है जहां जीमूतवाहन कहते हैं कि इस तपोवन में वृक्षों को भी अतिथि पूजन की शिक्षा दी गई है क्योंकि ये भ्रमरों की गूंज से मधुर वाणी से स्वागत बोल रहे हैं, फलों से लदी शाखाओं को झुका कर नमस्कार सा कर रहे हैं तथा पुष्पों की वर्षा करते हुए मुझ अतिथि को अर्घ्य दे रहे हैं।[2]

नागानन्द के प्रथम अङ्क में ही ब्रह्मचर्याश्रम का भी वर्णन है।[3] मलयपर्वत पर एक आश्रम दिखाई देता है जहां ब्रह्मचारी मृगछाल पहने, मौञ्जी धारण किये

---

1. राजा-वसन्तक! प्रत्युद्गम्य प्रवेश्यतां वसुभूतिः।

2. मधुरमिव वदन्ति स्वागतं भृङ्गशब्दै
नीतिमिव फलनम्रैः कुर्वतेऽमी शिरोभिः।
मम ददत इवार्घ्यं पुष्पवृष्टीः किरन्तः
कथमतिथिसपर्य्यां शिक्षिताः शाखिनोऽपि॥ नागानन्द I.12

3. वहीं I.11 तथा अहो न खलु मुदितमुनिजनप्रविचार्यमाण-सन्दिग्धवेदवाक्यविस्तरस्य पठद्वटुजनाच्छिद्यमानार्द्रसमिधः तापसकुमारिकापूर्यमाणबालवृक्षालवालस्य प्रशान्तरमणीयता तपोवनस्य।

हुए वेदमन्त्रों का पाठ करते हैं तथा उन के सामगान को नित्यप्रति सुन कर तोते भी सामगान करते हैं। प्रसन्न हुए मुनिजन वहां सन्दिग्ध वेदवाक्यों की व्याख्या कर रहे हैं तथा ब्रह्मचारी लोग पढ़ते पढ़ते यज्ञ के लिए गीली समिधाओं को (सुखाने को) तोड़ रहे हैं। तापसकुमारियां वृक्षों के आलवाल को पानी से सींच रही हैं। तपोवन की शान्ति और रमणीयता देखते ही बनती है।

विवाह संस्कार एवं नारी का स्थान

धर्मशास्त्रों में वर्णित आठ प्रकार के विवाहों में ब्राह्म विवाह और गान्धर्व विवाह के उल्लेख ही हर्ष की कृतियों में मिलते हैं। वर के द्वारा कन्या की याचना की जाने पर पिता कन्या का दान करता था। पहले वाग्दान अथवा सगाई की जाती थी, बाद में अग्नि के समक्ष विवाह सम्पन्न होता था।[1] विवाह सम्बन्ध समीप के प्रदेश में भी होते थे और दूर देश में भी होते थे।[2] बहुपत्नीप्रथा प्रचलित थी। पति की इच्छा पूर्ति के लिए प्रथम पत्नी को सपत्नीत्व स्वीकार करना होता था। पत्नी पति को पूरा सम्मान देती थी तथा विशेष अवसरों पर पूजा अर्चना भी करती थी।[3] विवाह के समय कन्या वयस्का होती थी। प्रियदर्शिका नाटिका में राजा कहते हैं–यदा वरयोग्या भविष्यति तदा मां स्मारय।[4] रत्नावली नाटिका में उदयन को देख कर अनुरागवती हुई सागरिका कामदेव के बहाने से उदयन का चित्र चित्रफलक पर बनाती है तो उस की सखी कहती है – सखि मा लज्जस्व ईदृशस्य कन्यारत्नस्यावश्यमेवेदृशे वरे अभिलाषेण भवितव्यम्[5]। इस से प्रतीत होता है कन्याओं के बालविवाह की प्रथा नहीं थी और वे स्वयं भी पतिवरण में अपनी इच्छा प्रकट कर सकती थीं।

---

1. *अयं महाराजो यस्याहं तातेन दत्ता। प्रिय II. पृ.36*
   अयं सः राजा उदयनो यस्याहं तातेन दत्ता। रत्नावली पृ. 49
2. *मम पुनर्मन्दभाग्या एकैव दुहिता। सापि त्वया*
   कस्मिन्नपि देशान्तरे दत्ता कथमेवं दूरदेशस्थिते
   भर्त्रा सहास्याः पाणिग्रहणं भविष्यतीत्यनया
   चिन्तयात्मापि मे न प्रतिभाति। रत्नावली I.12
3. *वासवदत्ता नाट्येन राजानं पूजयति। रत्नावली*
4. *प्रियदर्शिका I पृ० 19*
5. *रत्नावली II पृ० 77*

कन्याओं की समुचित शिक्षा पर भी इस युग में ध्यान दिया जाता था। हर्ष की नाट्यकृतियों की नायिकायें तथा उन की सखियां शिक्षित तथा ललित कलाओं में निपुण दिखाई देती हैं। आरण्यिका के रूप में प्रियदर्शिका साङ्कृत्यायनी के द्वारा रचित उदयन चरित्र से सम्बद्ध नाटक में वासवदत्ता का अभिनय करती है।[1] सागरिका के रूप में रत्नावली चित्रफलक पर राजा उदयन का चित्र बनाती है। उस की सखी सुसंगता के द्वारा पूछने पर वह बताती है कि मदन महोत्सव के प्रसङ्ग में मैंने भगवान् कामदेव का चित्र बनाया है। सुसंगता यह कहते हुए कि चित्र कुछ सूना सूना लग रहा है रति के बहाने, सागरिका का चित्र उदयन के साथ बना देती है।[2] नागानन्द नाटक में नायिका मलयवती देवी की पूजा में वीणावादन करती दिखाई गई है।[3] रत्नावली नाटिका के प्रथम अंक में वसन्तोत्सव के उपलक्ष्य में मदनिका अपनी सखी के साथ वसन्ताभिनय नृत्य करती हुई तथा द्विपदीखण्ड का गान करती हुई दिखाई गई है।[4] बाण के हर्षचरित से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है कि तत्कालीन स्त्रियां नृत्यगीत, चित्रकला आदि में प्रवीण होती थीं। हर्ष के जन्मोत्सव पर वारविलासिनी नारियां ही नहीं, दासियां, सामन्तों की स्त्रियां और राजमहिषियां भी नृत्य करती हैं।[5]

उच्च श्रेणी की महिलाओं में पर्दा प्रथा का चलन था। रत्नावली नाटिका में अवगुण्ठन शब्द का प्रयोग मिलता है। राजाओं के अन्तःपुर में वृद्ध कंचुकी और हिजड़े ही रक्षक का कार्य करते थे। फिर भी स्त्रियां घर से बाहर निकल कर धार्मिक सामाजिक पर्वों, उत्सवों और समारोहों में भाग लेती थीं। रत्नावली नाटिका में वसन्त उत्सव पर नर नारी मस्त हो कर नाचते गाते पिचकारियों से जलप्रहारक्रीडा करते दिखाये गये हैं।[6]

हर्ष के रूपकों में राजमहिषी का स्थान महत्त्वपूर्ण है। अनेक रानियों का उल्लेख भी मिलता है। अन्तःपुर में रानियों की सेवा के लिए दासियां भी नियुक्त

1. *प्रियदर्शिका III पृ० 51 से अङ्क के अन्त तक*
2. *रत्नावली II*
3. *नागानन्द I*
4. *रत्नावली I. 12 के बाद का गद्य*
5. *हर्षचरित- एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ. 68*
6. *रत्नावली I. 11*

होती थीं। मदनिका, चूतलिका, सुसङ्गता, काञ्चनमाला, सागारिका, निपुणिका आरण्यिका, चतुरिका मनोहारिका आदि परिचारिकारूप में दिखाई देती हैं। रत्नावली में वारवनिताओं के गान का भी उल्लेख है।[1]

वेष भूषा

हर्ष के समय में सूती, ऊनी और रेशमी सभी प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग होता था। नाटिकाओं में उत्तरीय, अंशुक, उष्णीष, स्तनांशुक तथा कंचुक के उल्लेख हैं। उत्तरीय का प्रयोग स्त्रीपुरुष दोनों करते थे। अंशुक रेशमी वस्त्र था। वासवदत्ता प्रसन्न हो कर विदूषक को पट्टांशुकयुगल प्रदान करती है।[2] स्पष्ट है कि पुरुष दो अंशुक एक धोती तथा दूसरा उत्तरीय पहनते थे। बाण ने अंशुकवस्त्र को अत्यन्त झीना और स्वच्छ माना है। कई बार इस वस्त्र पर फूल चिड़ियों की आकृतियां भी होती थीं। अंशुक दो प्रकार का होता था-एक भारतीय दूसरा चीन से लाया हुआ चीनांशुक।[3]

कंचुक सिला हुआ बांहदार घुटनों तक लटकता हुआ ओवरकोट जैसा खुला वस्त्र था। रत्नावली नाटिका के द्वितीय अंक में एक बौने व्यक्ति को वानर के डर से कंचुकी के कंचुक में घुस कर छिपता हुआ दिखाया है। स्त्रियां स्तनांशुक भी धारण करती थीं जिसे सामने से ले जाकर पीछे गांठ लगा कर बांध दिया जाता था।[4] स्त्रियां प्राय: रंगीन उत्तरीय ही पहनती होंगी। रत्नावली में वासवदत्ता को वर्णित करते हुए उदयन कहते हैं-अभी अभी स्नान करने के कारण विशेष निर्मल कान्ति वाली और कौसुम्भ रंग से लालरंगी चमकती हुई साड़ी पहने हुए तुम मकरकेतन कामदेव की पूजा करते समय ऐसी शोभित हो रही हो जैसे नूतन कोमल कोंपलों वाले वृक्ष से उत्पन्न लता।[5]

---

1. *श्रुत्वा त्वत्परिवारवारवनितागीतानि भृङ्गाङ्गना लीयन्ते मुकुलान्तरेषु शनकै: संजातलज्जा इव। रत्नावली 1.25*
   वारविलासिनीजनविलसितमवलोकयतु प्रियवयस्य:। रत्नावली I. 12 से पूर्व
2. *विदू०-तत्रभवत्या वासवदत्तया बन्धनान्मोचयित्वा स्वहस्त-दत्तमोदकैश्चिरस्य तावत्कालस्योदरं मे सुपूरितं कृतम्।*
   अन्यच्चैतत्पट्टांशुकयुगलं कर्णाभरणं च दत्तम्। रत्नावली 5.179
3. *सूक्ष्मविमलेन अंशुकेनाच्छादितशरीरा सरस्वती। (9)*
   बहुविधकुसुमशकुनिशतशोभितात् अतिस्वच्छादंशुकात् (114)
   हर्षचरित-एक सांस्कृतिक अध्ययन. पृ०. 78 पर उद्धृत
4. *अन्त: कंचुकिकञ्चुकस्य विशति त्रासादयं वामन:। रत्नावली II.3*
5. *वही I.20*

आभूषणों में कर्णाभरण, कुण्डल, रत्नावली, मौक्तिकदाम, हार, मंगलसूत्र, केयूर, कंकण, कटक, वलय, नूपुरों का उल्लेख है। स्वर्ण, रत्न, मणि आदि के आभूषणों के अतिरिक्त पुष्पाभरण भी धारण किये जाते थे।[1]

उत्सव पर्व

हर्ष की तीनों कृतियों का मंचन उत्सवों के उपलक्ष्य में तब किया गया था जब उस के आधिपत्य को स्वीकार करने वाला राजसमूह भी उस की सभा में उपस्थित हुआ था। प्रियदर्शिका और रत्नावली नाटिकाओं का अभिनय तो वसन्तोत्सव या मदनोत्सव के अवसर पर किया गया और नागानन्द नाटक का अभिनय इन्द्रोत्सव के उपलक्ष्य में हुआ था। वसन्तोत्सव का वर्णन तो इन कृतियों में विस्तार से मिलता है पर इन्द्रोत्सव का नहीं। इन्द्रोत्सव या इन्द्रमह या शक्रमह भारत का प्राचीन उत्सव था जिस में इन्द्रध्वज की पूजा होती थी। हरिवंशपुराण में कृष्ण व्रज के गोपों से पूछते हैं कि तुम इतने प्रसन्न हो कर किस उत्सव की तैयारी में लगे हो ? यह शक्रमह क्या है जिस के लिए आप सब इतने हर्षित हैं?[2] तब एक बूढ़े गोप ने बताया - इन्द्र देवों का राजा है। वही मेघों से कृषि के लिए जल दिलवा देता है इसलिए वर्षा की समाप्ति के बाद राजा लोग, अन्य सब मनुष्य और हम भी इन्द्रमह नामक उत्सव के द्वारा इन्द्र की पूजा करते हैं। श्रीकृष्ण ने तब उन सब गोपों को गिरिमह मनाने की प्रेरणा देते हुए कहा - हम लोग गोवर्धन से जीविका चलाने वाले वनचारी जीव हैं। हमारी वृत्ति के लिए तो गायें ही सब कुछ हैं। आओ हम गिरि देवता और गायों की पूजा करें। फिर तीन दिन तक गाय-ग्वालों ने संगीत वाद्य तथा अनेक प्रकार के भोजन पकवान आदि से खूब आनन्द मनाया। वसन्तोत्सव भी इसी प्रकार का लोकजीवन से जुड़ा उत्सव है जिस का वर्णन रत्नावली में मिलता

1. *कीर्णैः पिष्टातकौघैः कृतदिवसमुखैः कुङ्कुमक्षोदगौरै-*
   र्हैमालङ्कारभाभिर्भरनमितशिखैः शेखरैः कैङ्किरातैः।
   एषा वेषाभिलक्ष्यस्वविभवविजिताशेषवित्तेशकोशा
   कौशाम्बी शातकुम्भद्रवखचितजनेवैकपीता विभाति॥ रत्नावली 1.10.
   स्रस्तः स्रग्दामशोभां त्यजति विरचितामाकुलः केशपाशः।
   वहीं 1.16.
2. *कोऽयं शक्रमहो नाम येन वो हर्ष आगतः। हरिवंश*
   (वा.श. अ. कृत पृथिवीपुत्र पृ० 263 पर उद्धृत) 2.15.3.

है। कोमल मृदङ्ग ध्वनि के साथ मधुर संगीत चल रहा है। नगरवासी साथ में ताली बजा रहे हैं। मदिरापान से मतवाली कामिनियां अपने हाथों में पकड़ी पिचकारियों से जल फेंक रही हैं जिस से भीगे नागर पुरुष कौतूहल उत्पन्न कर रहे हैं। गलियों की शोभा चारों ओर से बजते मृदङ्गों के तथा चर्चरी ताल से बढ़ रही है। उड़ते गुलाल से दसों दिशायें लाल हो रही हैं।[1]

नगरवासियों की चमकती वेशभूषा की, स्वर्णाभूषणों की तथा अशोक पुष्पों से बने शिरोभूषणों की शोभा से कौशाम्बी नगरी ने कुबेर की कोशसम्पदा को भी पीछे छोड़ दिया है। चारों ओर पीतवर्ण से ऐसा लग रहा है मानो यहां के निवासियों के शरीरों पर सुवर्ण का लेप कर दिया गया है। गालों से झरते गुलाल में पिचकारियों का पानी मिल कर पूरे आंगन को सिन्दूरी रंग का कर रहा है। हवा में उड़ते गुलाल से अन्धेरा सा दीखता है और बीच बीच में आभूषणों की मणियां चमक उठती हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानों पाताल लोक में चमकती मणियों वाले भुजङ्ग फण उठाये हों। मस्त होकर नाचती हुई एक नर्तकी को तो न अपने शरीर का होश है न खुले जूड़े से गिरती पुष्पमालाओं का।[2] इस मस्ती भरे वातावरण में मकरन्दोद्यान में लाल अशोक के वृक्ष के नीचे कामदेव की मूर्ति स्थापित कर के लाल साड़ी में सजी महारानी वासवदत्ता कामदेव तथा राजा की पूजा करती है। पूजाकर्म में वह ब्राह्मण वसन्तक को पुष्प, आभरण, लेप्य आदि देती है। उत्सव के वर्णन में मधुमास का भी उल्लेख है अत: कहा जा सकता है कि यह उत्सव चैत्रमास में मनाया जाता था।[3] इस उत्सव में विवाहित स्त्रियां तथा अविवाहित कन्यायें दोनों ही कामदेव की पूजा करती थीं।[4]

प्रियदर्शिका के तृतीय अङ्क में उदयनोत्सव का उल्लेख है। प्रतीत होता है कि इस उत्सव को तब मनाया जाता था जब राजा शत्रु-सेनाओं को पराजित

---

1. प्रेक्षस्व तावदस्य मधुमत्तकामिनीजनमर्दलोद्दामचर्चरी-
शब्दमुखररथ्यामुखशोभिनः प्रकीर्णपटवासपुञ्ज-
पिञ्जरितदशदिशामुखस्य सश्रीकतां मदनमहोत्सवस्य। रत्नावली I. पृ० 22-23

2. रत्नावली I पद्य 10-12

3. वही I. पद्य 15.

4. वही पृ०46-47

कर अपने राज्य में लौटते थे।[1]

नाट्यशाला : इन सब उत्सवों में नृत्य, संगीत और नाटकों का अभिनय होता था। हर्ष की कृतियों में गन्धर्वशाला, प्रेक्षागृह तथा प्रेक्षा के उल्लेख मिलते हैं।[2] जिस प्रेक्षागृह में उदयनचरिताधारित नाटक खेला गया था उस का वर्णन सांकृत्यायनी ने इस प्रकार किया है–सैंकड़ों रत्नों से सुशोभित सुवर्णमय स्तम्भों पर लटकती हुई बड़ी बड़ी मुक्तामालाओं से रमणीय तथा अप्सराओं को भी सौन्दर्य में परास्त करने वाली युवतियों से युक्त यह नाट्यशाला देवविमान के समान लग रही है।[3] यहां युवतियों से तात्पर्य खम्भों पर बनी हुई शाल-भंजिकाओं या अन्य उत्कीर्ण स्त्री मूर्तियों से प्रतीत होता है।

वास्तुकला : श्रीहर्ष की इन तीन कृतियों में तत्कालीन वास्तु कला का पूर्ण विवरण तो नहीं है पर जो नामोल्लेख मिलते हैं उन की पुष्टि बाण के हर्षचरित में उपलब्ध वर्णनों से होती है। रत्नावली में यह उक्ति कि मदन महोत्सव से बढ़ने वाले नगरवासियों के प्रमोद को देखने के लिए महाराज प्रासाद की ओर चले होंगे। और फिर अरे! महाराज तो प्रासाद पर चढ़ गये। यहां महाराज का महल की ऊपरी मंजिल पर चढ़ कर नगरवासियों को देखना सिद्ध होता है।

हर्षचरित के अनुसार हर्ष के प्रासाद या राजमहल में तीन चौक या कक्ष्याएं थीं। पहले चौक में राजद्वार के बाईं ओर सम्राट् का हाथीखाना और दाईं ओर मन्दुरा या घुड़साल थी। मन्दुरा का उल्लेख रत्नावली के द्वितीय अंक में हुआ है।[4] दूसरे चौक में बीचों बीच महा आस्थानमंडप था जिसके सामने अजिर या खुला आंगन था। मुगलकालीन महलों में यही दरबारे आम कहलाता था। अजिर से कुछ सीढ़ियां चढ़ कर आस्थान मण्डप में पहुंचा जाता था। उदयन इसी आस्थान मण्डप पर से मदनमहोत्सव में मग्न पुरवासियों की क्रीडायें देख रहे

1. *प्रियदर्शिका I. पृ. 55*
2. *वही पृ. 51, 52, 53, 55*
3. *आभाति रत्नशतशोभितशातकुम्भ–*
   स्तम्भावसक्तपृथुमौक्तिकदामरम्यम्।
   अध्यासितं युवतिभिर्विजिताप्सरोभिः
   प्रेक्षागृहं सुरविमानसमानमेतत्॥
4. *रत्नावली II पद्य 2. पृ० 65.*

थे। प्रासाद की दूसरी कक्ष्या तक आने जाने वाले नौकर चाकर बाह्य प्रतिहार कहलाते थे। इस के आगे तीसरी कक्ष्या में धवल गृह था जिस में अन्तः प्रतिहार ही जा सकते थे। धवल गृह के चारों ओर कुछ अन्य वास्तु जैसे गृहोद्यान, दीर्घिका या वापी, स्नानभूः या धारागृह, देवगृह, महानस या रसोई आदि थे। धवल गृह दो या इस से अधिक तल का होता था। सम्राट् और अन्तःपुर की रानियां ऊपर के तल में निवास करती थीं। वहां एक ओर सौध (केवल रानियों के उठने बैठने का स्थान) और दूसरी ओर वासगृह होता था। वासगृह में भित्तिचित्र बनाये जाते थे इसलिए उसे चित्रशालिका भी कहते थे। वासगृह का ही एक भाग शयनगृह था।[1] इन में से कई वास्तु भागों के उल्लेख हर्ष की कृतियों में हैं। प्रियदर्शिका नाटिका में राजकुल[2], प्रतिहारभूमि[3], शयनकक्ष[4], दीर्घिका[5], स्नानभूः[6] धारागृहोद्यानदीर्घिका[7], चित्रशाला[8] के उल्लेख मिलते हैं। गन्धर्वशाला का भी उल्लेख प्रियदर्शिका में है।[9] दीर्घिका गृहोद्यान के बीचों बीच बनी होती थी, उस की रमणीयता की प्रशंसा करते हुए राजा कहते हैं–देखो विकसित कमलों के सदृश कान्ति वाली स्वच्छवापी उद्यानदेवता की आंख की तरह दर्शन मात्र से आनन्दित कर रही है।[10] इस प्रकार श्रीहर्ष के राजमहल तत्कालीन राजकीय समृद्धि का प्रमाण हैं।

लोगों की धार्मिक आस्था एवं अन्धविश्वास

हर्ष की आस्था हिन्दुधर्म तथा बौद्ध धर्म में थी यह तो उस की कृतियों

---

1. *हर्षचरित – एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ. 203–208*
2. *प्रियदर्शिका I– पद्य 8*
3. *वही I– पृ० 12*
4. *वही III– पृ. 78*
5. *वही II– पद्य 12 पृ .18*
6. *वही पद्य 11. पृ. 18*
7. *वही II पृ. 25*
8. *वही III पृ. 71*
9. *वही III पृ. 56*
10. *उद्यानदेवतायाः स्फुटपङ्कजकान्तिहारिणी स्वच्छा दृष्टिरिव दीर्घिकेयं रमयति मां दर्शनेनैव। प्रियदर्शिका II पद्य 5*

से प्रकट है। मानव जीवन में घटती घटनाओं में विधि के विधान तथा दैवयोग की चर्चा बार बार आई है जिस से प्रतीत होता है कि लोगों का ईश्वरीय शक्ति में विश्वास था।[1] रत्नावली तथा प्रियदर्शिका में शिव पार्वती की स्तुति की गई है।[2] लोगों की बहुदेवतावाद में आस्था थी।[3] रत्नावली के भरतवाक्य में यज्ञों के द्वारा देवताओं को प्रसन्न करने की इच्छा प्रकट की गई है।[4] इन्द्रजाल वर्णन प्रसङ्ग में विष्णु, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र तथा सिद्धगणों का वर्णन हुआ है।[5] ब्रह्मा को कमल में स्थित, शिव को चन्द्रकला से युक्त, विष्णु को धनुष, खड्ग, गदा और चक्र इन चार चिह्नों से युक्त तथा इन्द्र को ऐरावत पर आरूढ़ दिखाया गया है।[5] नागानन्द नाटक में नान्दी के श्लोकों में भगवान् बुद्ध की स्तुति है पर भरतवाक्य में गौरी की स्तुति की गई है।[6]

देवी देवताओं के अतिरिक्त लोग भूत प्रेत, जादू टोने, मणि मन्त्र, औषधियों में भी विश्वास रखते थे।[7]

ooo

---

1. द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोप्यन्तात्।
   आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः॥
   रत्नावली I पद्य 6.
2. रत्नावली पद्य 1-3
   प्रियदर्शिका I पद्य 1-2.
3. जितमुडुपतिना नमः सुरेभ्यः रत्नावली 1.4
4. रत्नावली IV पद्य 22.
5. रत्नावली IV पद्य 11-12.
6. नागानन्द I पद्य 1-2, V पद्य 39 I पद्य 14
7. रत्नावली पृ०-71

विज्ञान, दर्शन और संस्कृति में समन्वय की आवश्यकता

आज का युग विज्ञान की उपलब्धियों का युग है। नित नये वैज्ञानिक आविष्कार प्रकृति पर विजय पाने की होड़ कर रहे हैं। सुख सुविधाओं के अम्बार हमारी जीवन शैली का अनिवार्य अंग बन गये हैं। पर प्रकृति का निरन्तर दोहन और दूसरे शब्दों में निरन्तर शोषण करते हुए जब कभी हमें किसी भूकम्प, ज्वालामुखी या सुनामी का सामना करना पड़ता है तो हमारे सभी वैज्ञानिक उपकरण धरे के धरे रह जाते हैं। कुछ वर्ष पूर्व इंग्लैण्ड के पास ज्वालामुखी (ऐयाफ्याटलायोकुल) फटा तो पूरा यूरोप ठप्प हो गया। दस दिनों तक कोई हवाई जहाज़ नहीं उड़ सका। भारत में भुज में आया भूकम्प हो या उत्तराखण्ड की बाढ़, समुद्रतटवर्ती इलाकों में आई सुनामी हो या जम्मू कश्मीर में हुई विनाशकारी वर्षा सब हमें यही सिखाते हैं कि सृष्टि एक ऐसी पहेली है जिसे पूरी तरह समझ पाना हमारे बस का नहीं। पूरे ब्रह्माण्ड या पूरे सौर मण्डल की बात तो दूर है हम इस पृथ्वी और उस के वायुमण्डल के रहस्यों को थोड़ी सी मात्रा में ही समझ पाए हैं, तभी तो जब वैज्ञानिक उपकरणों के आधार पर की गई कभी बारिश की, कभी बर्फवारी की और कभी भीषण गर्मी की भविष्यवाणियां वास्तविक धरातल पर खरी नहीं उतरतीं तो वैज्ञानिक कहते हैं कि यह तो एलनिन्यो का असर है। एलनिन्यो धार्मिक साहित्य से लिया गया शब्द है जिस का अर्थ है - ईश्वर का बच्चा। स्पष्ट है कि जहां विज्ञान पराजित होने लगता है वहां वह दर्शन का सहारा ढूंढ़ता है। वस्तुतः विज्ञान और दर्शन परस्पर विरोधी नहीं, एक दूसरे के पूरक हैं। विज्ञान इस सृष्टि के रहस्यों की खोज में लगा हुआ है और दर्शन का आरम्भ भी मानव के मन में उठी यही जानने की इच्छा से हुआ है कि यह सृष्टि क्यों और कैसे उत्पन्न हुई? जीवन की शुरुआत कैसे हुई ? सृष्टि और जीवन के मूलस्रोत क्या हैं ? सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र ये सब क्या अनादि हैं ? इसी प्रकार की जिज्ञासा दर्शन के मूल में भी रही है और विज्ञान

के मूल में भी रही है। विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में कई सूक्त हैं जैसे हिरण्यगर्भ सूक्त, अस्यवामीय सूक्त, पुरुषसूक्त, नासदीय सूक्त जिन में सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में विवेचन मिलता है। नासदीय सूक्त का ऋषि प्रश्न उठाता है कि इस अद्भुत सृष्टि की रचना कहां से कैसे हुई, यह कौन जानता है, कौन कह सकता है? फिर वह स्वयं उत्तर देता है कि इस सृष्टि का जो अध्यक्ष परम व्योम में है वह शायद जानता होगा, शायद नहीं जानता होगा।[1] यह नासदीय सूक्त सृष्टिविज्ञान का भी उद्गम स्रोत है और भारतीय दर्शन का भी। प्रो. वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस सूक्त में दस दार्शनिक वादों - सदसद्वाद, रजोवाद, व्योमवाद, अपरवाद, आवरणवाद, अम्भोवाद, अमृतमृत्युवाद, अहोरात्रवाद, दैववाद और संशयवाद को खोजा है।

ग्रीस में अरस्तू तथा भारत में कणाद ऋषि दोनों भौतिक विज्ञान के भी और दार्शनिक सम्प्रदायों के भी प्रवर्तक हैं। अरस्तू के अनुसार सृष्टि के चार मूल पदार्थ पृथ्वी, वायु, जल और अग्नि हैं।[2] वैशेषिक दर्शन के प्रणेता कणाद ने पांच महाभूतों के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इस प्रकार सृष्टि के रहस्यों को जानने का प्रयास विज्ञान और दर्शन दोनों ही करते हैं। भारतीय दर्शन विराट् जगत् और विराट् में पुरुष की कल्पना करता है तथा ब्रह्माण्ड और पिण्ड के साम्य को ''यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'' कह कर स्वीकारता है। आयुर्वेद विज्ञान मनुष्य के शरीर की रचना को समझने में संलग्न है जबकि शरीर से भिन्न चेतन तत्त्व की खोज दर्शन का विषय है। जहां तक संस्कृति का प्रश्न है वह दर्शन और विज्ञान दोनों से जुड़ी है क्योंकि वह दोनों को अपने में पचा कर जन्म लेती है। विज्ञान उस के बाहरी ठाठ बाट को जन्म देता है। दर्शन उस की अन्तरात्मा को प्रकट करता है। दर्शन से जुड़ी चिन्तन धारायें, चिन्तन से प्रादुर्भूत साहित्य के विविध रूप, संगीतादि विविध कलायें, विज्ञान से आविष्कृत और विकसित नाना शिल्प, उद्योग, आविष्कार सभी संस्कृति के अंग बनते हैं। किसी भी देश की संस्कृति उस देश में विकसित हुई चिन्तन धाराओं और उन के फलस्वरूप विकसित हो रहे शिल्परूपों को लेकर पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ती रहती है। प्राचीन और नूतन का समन्वय उस संस्कृति को संवारता है, उसे प्रगति

1. *ऋग्वेद 10.129*

2. *Brief History of time : Stephen W. Hawhing P. 63*

की ओर ले जाता है। जैसे वनस्पति जगत् में पुराने पत्तों की खाद हर वसन्त में उसे नया ठाठ बाट, नयी कोंपलों, फल फूलों की समृद्धि प्रदान करती है वैसे ही संस्कृति अपने नित्य निर्माणकारी तत्त्वों की विरासत को लेकर आगे बढ़ती है और पुरानी अनुपयोगी जीर्ण शीर्ण रूढ़ियों को छोड़ती जाती है।

विज्ञान और दर्शन

आधुनिक युग में विज्ञान की उन्नति ने मानव जाति के लिए सुखसुविधाओं के अम्बार लगा दिये हैं। रेडियो, टैलीफोन, कम्प्यूटर, टैलीविज़न, बिजली से चलने वाले नाना उपकरण-पंखे, वातानुकूलन यन्त्र, रेफ्रिजेरेटर, हीटर, यातायात के क्षेत्र में रेल, मोटर, वायुयान और जलयान आदि असंख्य सुविधायें विज्ञान ने प्रदान की हैं पर इन सब वैज्ञानिक आविष्कारों की पृष्ठभूमि में दार्शनिक चिन्तन होता है या दूसरे शब्दों में कहें तो मूलत: प्रत्येक वैज्ञानिक दार्शनिक होता है। ध्वनि के क्षेत्र में जो रेडियो टैलीफोन आदि का आविष्कार हुआ उस के मूल में यह दार्शनिक सिद्धान्त नकारा नहीं जा सकता कि आकाश का गुण शब्द है। न्यायदर्शन के अनुसार शब्द केवल आकाश में रहता है जबकि वेदान्त दर्शन के अनुसार शब्द आकाश के अतिरिक्त अन्य महाभूतों में भी रहता है। वेदान्त का सिद्धान्त है कि आकाश में केवल एक गुण शब्द है, वायु में शब्द गुण भी है और स्पर्श भी, अग्नि में तीन गुण हैं शब्द, स्पर्श और रूप, जल में चार गुण है शब्द, स्पर्श, रस और रूप तथा पृथिवी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पांच गुण निवास करते हैं।[3] सांख्य दर्शन भी शब्द नामक गुण की अवस्थिति सभी महाभूतों में स्वीकारता है। न्यायदर्शन ने शब्द को आकाश में समवाय सम्बन्ध से रहने वाला श्रोत्र से ग्राह्य विशेष गुण माना है।'[4] इस प्रकार शब्दोत्पत्ति के लिए आकाश तो समवायिकारण है। न्यायशास्त्र में शब्दोत्पत्ति के असमवायि कारणों तथा निमित्त कारणों की चर्चा है।[5] घण्टे में दण्ड का प्रहार करने पर जो शब्द होता है उस का निमित्त कारण दण्ड का घण्टे के साथ संयोग तथा इस संयोग से घण्टे में उत्पन्न प्रकम्पन है। यह भी कहा है कि घण्टे को

---

3. *तत्राकाशस्य शब्दो गुण:, वायोस्तु शब्दस्पर्शौ, तेजसस्तु शब्दस्पर्शरूपाणि, अपां तु शब्दस्पर्शरूपरसा: पृथिव्यास्तु शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा:। वेदान्त परिभाषा*
4. *श्रोत्रग्राह्यो गुण: शब्द:। आकाशमात्रवृत्ति:। तर्क संग्रह।*
5. *भेरीदण्डसंयोगो दण्डगतश्च वेगो निमित्तकारणम्। न्यायकन्दली शब्द निरूपण पृ. 694*

हाथ से छूने पर उस का कम्पन समाप्त होता है तो शब्द भी समाप्त हो जाता है। क़म्पन से उत्पन्न शब्द को श्रोता तक पहुंचाने में वायु भी निमित्त कारण है। वायु में ध्वनि तरंगें वीचीतरंगन्याय तथा कदम्बगोलक न्याय से आगे बढ़ती रहती हैं और शब्द को श्रोता के कर्णकुहर तक पहुंचाती हैं।[6] स्पन्दन से ध्वनि उत्पत्ति का यह सिद्धान्त दार्शनिकों और वैज्ञानिकों दोनों ने स्वीकार किया है। विज्ञान ने नाना प्रयोगों के पश्चात् इसी सिद्धान्त के आधार पर कई नये आविष्कार किये हैं। मुक्तावली टीका में इस स्पन्दन से उत्पन्न ध्वनि के निमित्त कारण के रूप में पवनादिकन्तु निमित्तम् कहा है जिस का तात्पर्य है कि वायुतरंगों के अतिरिक्त कोई अन्य पदार्थ भी शब्द का निमित्त कारण बन सकता है। ग्राहम बेल ने (जिसने टैलीफोन का आविष्कार किया) यह विचार प्रस्तुत किया था कि जब मनुष्य के कान का पर्दा किसी शब्द के छोटे छोटे वायुप्रकम्पनों से प्रकम्पित होकर उन्हें अंकित कर सकता है और उस अंकन को मस्तिष्क तक भेज सकता है तो हम चुम्बक और विद्युत् के द्वारा इन ध्वनितरंगों को भी भेज सकने में समर्थ हो सकते हैं। उन्होंने एक मरे हुए व्यक्ति के कान को लेकर उसके पर्दे के साथ एक तिनका जोड़ कर प्रयोग किया। तिनके को एक धूएं वाली प्लेट से जोड़ा। कान के पास शब्द बोला तो प्लेट पर खरोंच पड़ गई। बस इन्हीं प्रयोगों के आधार पर टैलीफोन का संवेदन शील पर्दा बनाया गया जिस का सम्बन्ध विद्युत् चुम्बकीय कुण्डली से जोड़ कर आकाश में विद्युत् का स्पन्दन तार के द्वारा दूर भेजा गया। विज्ञान ध्वनि तरंगों को विद्युत् तरंगों में बदल कर उन्हें दूर भेजता है पर न्याय की तरह शब्द गुण को स्वीकार नहीं करता। उसी प्रकार जैसे रंगीन टैलीविज़न में दूर से रंग नहीं भेजे जाते प्रकाश तरंगें भेजी जाती हैं।

आज का युग परमाणु ऊर्जा का युग है, परमाणु शस्त्रास्त्रों का युग है। सृष्टि प्रक्रिया के मूल को खोजते हुए दार्शनिकों ने हज़ारों वर्ष पूर्व भी इस परमाणु पर चिन्तन किया था। ईसा से 400 वर्ष पूर्व ग्रीस देश में डेमोक्रिटस ने कहा कि सृष्टि के पदार्थ ऐसे छोटे से छोटे कणों से बने हैं जिन्हें विभाजित नहीं किया जा सकता। इन कणों को उसने एटम नाम दिया क्योंकि ग्रीक भाषा में एटोमस (Atomos) शब्द का अर्थ अविभाज्य होता है।[7] भारत में महर्षि

---

6. वीचीतरंगन्यायेन तदुत्पत्तिस्तु कीर्तिता। कदम्बगोलकन्यायादुत्पत्तिः। कारिकावली श्लो. 166

कणाद ने वैशेषिक सूत्रों में परमाणु को किसी द्रव्य का वह छोटे से छोटा अंश माना है जिससे छोटा कोई और नहीं हो सकता। उनके अनुसार परमाणु अविभाज्य होता है और अतीन्द्रिय होता है अर्थात् किसी इन्द्रिय से प्रत्यक्ष नहीं हो पाता। किसी अंधेरे कमरे के किसी छिद्र से प्रकाश आ रहा हो तो उस प्रकाश में जो धूल के कण दिखाई देते हैं उन में से हर एक कण त्रसरेणु या त्रुटि कहलाता है। यह त्रसरेणु तीन द्व्यणुकों से बना होता है तथा यह द्व्यणुक दो अणुओं से बनते हैं। इस प्रकार एक त्रसरेणु का छठा अंश अणु है। वैशेषिक दर्शन जगत् के कारण रूप में चार प्रकार के अणु मानता है-पार्थिव, आप्य, तैजस और वायवीय। पृथिवी जल तेज और वायु चार द्रव्य वे ही हैं जिन को महाभूत के रूप में बाह्य इन्द्रियों से अनुभूत किया जा सकता है। पृथिवी द्रव्य का जो सब से अन्तिम सूक्ष्म स्तर है वह ही पृथिवी-अणु या पार्थिव अणु है। इसी प्रकार जहां जल की सूक्ष्मता की सीमा समाप्त हो जाती है वही जलीय या आप्य अणु है। इसी प्रकार तैजस और वायवीय अणु स्वीकार किये गये हैं। वैशेषिक दर्शन यह भी स्वीकार करता है कि प्रत्येक वर्ग का अणु जैसे जलीय अणु अपने में समवेत विशेष गुणों के कारण अन्यवर्गीय पार्थिव अणु से अपने आप को पृथक् रखता है। अपने वर्ग में भी एक अणु दूसरे अणु से पृथक् है। इस पृथक्ता के नियमन के लिए वैशेषिक दर्शन में प्रत्येक अणु में एक विशेष नामक पदार्थ की कल्पना की गई है जो प्रत्येक अणु को अन्य अणुओं से पृथक् रखने में समर्थ होता है। इस विशेष पदार्थ या तत्त्व के कारण ही इस दर्शन को वैशेषिक दर्शन का नाम दिया गया है।[8] आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से इस विवेचन को देखें तो कह सकते हैं कि अणु तत्त्व का सर्गरचना के निरन्तर चालू प्रक्रम में कहीं मध्यगतस्तर पर स्थान है जैसे आधुनिक रसायन शास्त्र में एलीमैन्ट का सर्गरचनाप्रक्रम में किसी मध्यगत स्तर पर स्थान है। एलीमैन्ट की परिभाषा यह दी गई है जो वही वह है अर्थात् वह केवल एक पदार्थ है उस में किसी अन्य पदार्थ का मिश्रण नहीं। शुद्ध सुवर्ण अपने अन्तिम अणु-कण तक सोना है। जब उस अन्तिम अणु का विश्लेषण कर दिया जाता है तब वह सोना न रह कर अपने मूल तत्त्वों के रूप में बिखर जाता है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार पृथिवी के एक परमाणु में बारह मूलतत्त्व या एलीमैन्ट हैं। आधा

---

7. S.W Hawhings A Brief History of Time. P.63

8. आचार्य उदयवीर शास्त्री : वैशेषिक दर्शन पृ० 397-400

भाग आक्सीजन, लगभग एक चौथाई भाग सिलिकन तथा शेष चौथाई भाग एल्युमीनियम लोहा आदि दस मूलतत्त्व हैं। इसी प्रकार.जलीय अणु में दो भाग हाइड्रोज़न और एक भाग आक्सीज़न है। हाइड्रोज़न एलीमैन्ट अपने अन्तिम अणु तक हाइड्रोज़न ही है उस में हीलियम् आदि किसी अन्य एलीमैन्ट का सम्मिश्रण नहीं है। वही वह है अतः एलीमैन्ट है। एलीमैन्ट की तुलना हम सांख्यदर्शन के तत्त्व **तन्मात्र** से कर सकते हैं। पातंजलयोगसूत्र-विशेषाविशेषलिङ्गानि गुणपर्वाणि की व्याख्या व्यास भाष्य में इस प्रकार दी है-षड् अविशेषाः-तद्यथा, शब्दतन्मात्रं, स्पर्शतन्मात्रं, रूपतन्मात्रं, रसतन्मात्रं, गन्धतन्मात्रं, पञ्चाविशेषाः, षष्ठश्चाविशेषोऽस्मितामात्र इति। इस प्रकार आधुनिक रसायन विज्ञान द्वारा वर्णित एलीमैन्ट तत्त्व वैशेषिक दर्शन में परमाणु रूप में, सांख्य दर्शन में तन्मात्र रूप में तथा योगदर्शन में अविशेष रूप में वर्णित है।

वैशेषिक दर्शन का यह परमाणु सर्गरचना परम्परा में आदि मूलस्तर पर न हो कर कहीं मध्यगत स्तर पर है। जैसे रसायन विज्ञान में एलीमैन्ट को मूल तत्त्व मान कर उसके आगे के रचना स्तरों का विवेचन किया जाता है यद्यपि वह एलीमैन्ट भी कारण तत्त्वों से उत्पन्न होता है उसी प्रकार वैशेषिक दर्शन परमाणु को मूल तत्त्व स्वीकार कर आगे के रचना स्तरों का विवेचन करता है। यहां पृथिवी के सूक्ष्मतम अणु को परमाणु इस लिए कह दिया जाता है क्योंकि पृथिवी के रूप में अभिव्यक्त होने वाला वह तत्त्व सब से छोटा है। उस से आगे जो भी पदार्थ पृथिवीरूप होगा वह उस से बड़ा होगा। पृथिवी रूप में प्रकट वह सूक्ष्म अणु इसी दृष्टि से परमाणु कहा जाता है।

आधुनिक विज्ञान ने एटम का विभाजन या विश्लेषण प्रोटोन, इलैक्ट्रान और न्यूट्रान में किया है।[11] भारतीय सांख्य योग दर्शन में समस्त विश्व का मूल उपादान कारण सत्त्व रजस् तमस् रूप प्रकृति मानी गई है। सर्गरचना दो भागों में बांटी गई है-अध्यात्म और अधिभूत। सत्त्व रजस् और तमस् की साम्यावस्था प्रकृति, अहंकार, मन और दश इन्द्रियां अध्यात्म रचना के अन्तर्गत हैं। अधिभूत रचना का सर्वप्रथम तत्त्व तन्मात्र कहा गया है। उसी के आगे पञ्च महाभूत आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथिवी हैं।

---

11. एटम में प्रोटोन और न्यूट्रान से बने केन्द्र (न्यूक्लियस) के गिर्द इलैक्ट्रान घूमते हैं। W Brief HIstory of Time P. 60

इस प्रकार हम देखते हैं कि दर्शन और विज्ञान का परस्पर सम्बन्ध प्राचीन काल से चला आ रहा है। दोनों क्षेत्रों के मनीषियों ने सृष्टि के रहस्यों को जानने का प्रयास जारी रखा है। फिर भी आज तक जो कुछ खोज लिया है वही पूर्ण सत्य है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। वैज्ञानिक बड़ी विनम्रता से यह कहते हैं कि विज्ञान की खोज कथमपि पूर्ण नहीं हुई है। सृष्टि का ज्ञान अनन्त है और अभी उस का छोटा सा अंश ही मानव के हाथ लगा है। इस में कोई सन्देह नहीं कि विज्ञान और दर्शन दोनों सत्य की खोज में संलग्न हैं। सत्य के भी दो रूप हैं, एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म। सृष्टि बाहर भी है और अन्दर भी है। विज्ञान मुख्यतया स्थूल स्वरूप, बाह्य सृष्टि के तत्त्वों की पहचान करने में लगा है और नित नयी नयी खोजें करता हुआ कदम आगे बढ़ा रहा है। दर्शन का उद्देश्य स्थूल से आगे सूक्ष्म तत्त्व की खोज करना है और स्थूल शरीर के भीतर सूक्ष्म, चेतन आत्मतत्त्व की पहचान करना है।

विज्ञान और आत्मज्ञान (दर्शन) से समन्वित संस्कृति की आवश्यकता

विज्ञान की प्रगति के द्वारा आधुनिक युग के मानव ने अभूतपूर्व शक्ति प्राप्त कर ली है जिस से वह प्रकृति पर अपना आधिपत्य स्थापित कर रहा है। सौ वर्ष पूर्व जिन सुविधाओं की कल्पना भी नहीं थी आज वे सामान्य बात लगती हैं। वर्षों महीनों में पूरी की जा सकने वाली यात्रायें अब घण्टों मिनटों में पूरी हो जाती हैं। कृषि, उद्योग, चिकित्सा आदि के क्षेत्रों में विज्ञान ने कई चमत्कार कर दिखाए हैं। वस्तुतः जिस अणु से यह सृष्टि बनी है और जिस अणु के विस्फोट से इस सृष्टि का विनाश भी सम्भव है, वह अणुशक्ति आज मानव के हाथ में है। जनसंचार माध्यमों ने दूर-दूर के मानवों के बीच स्थान और काल की दूरियां समाप्त कर दी हैं। विज्ञान की इन सब उपलब्धियों का अपना महत्त्व है जिसे झुठलाया नहीं जा सकता पर इस के साथ यह भी भूलना नहीं चाहिए कि विज्ञान की सहायता से प्राकृतिक संपदाओं का अंधाधुंध दोहन और दुरुपयोग मानवजाति को विनाश की ओर ले जा सकता है। इस सृष्टि में प्रकृति की हर वस्तु अन्य अनेक वस्तुओं के साथ जुड़ी है। हर जीव की सत्ता अन्य असंख्य जीवों की सत्ता पर निर्भर है। छोटे-छोटे कीड़े, चींटियां, कीटाणु सूखे पत्तों की खाद बना कर वृक्ष पौधों को पोषित करते हैं। पेड़ पौधे आक्सीज़न पैदा कर हमें प्राणवायु देते हैं। मछलियां पानी में रह कर पानी को शुद्ध बनाती

हैं। सृष्टि की सभी वस्तुएं, सभी प्राणी परस्परालम्बन के सिद्धान्त पर स्थित और जीवित हैं। इसी प्रकार सभी वस्तुएं, सभी प्राणी प्राकृतिक नियमों की मर्यादा में बंधे हैं। यदि उन मर्यादाओं का उल्लंघन कर प्राकृतिक संतुलन को बिगाड़ दिया जाता है तो परिस्थितियां नियंत्रण से बाहर हो जाती हैं और विनाश की ओर ले जाती हैं। इस दृष्टि से विज्ञान और आत्मज्ञान दोनों के समन्वय की आवश्यकता है। विज्ञान तो नीति निरपेक्ष होता है, उस का विकास न नैतिक कहा जा सकता है न अनैतिक। वह विकास श्रेयस्कर भी हो सकता है, और हानिकर भी हो सकता है। यदि मार्गदर्शन उसे गलत मिलता है तो उच्छृंखल दानव की तरह वह अपने स्रष्टा मानव जगत् का ही संहार कर सकता है। यदि उसे ठीक मार्गदर्शन मिलता है तो मर्यादाओं का पालन करते हुए सेवक की तरह वह मानवजाति की सेवा कर सकता है। यह मार्गदर्शन दर्शन या आत्मज्ञान से ही प्राप्त हो सकता है। विज्ञान गति देता है पर वह दिशा नहीं देता। दिशा दिखाना आत्मज्ञान का काम है। विज्ञान ने आग की खोज की है। उस आग से भोजन भी पकाया जा सकता है और अपना या पड़ौसी का घर भी जलाया जा सकता है। आग में जलाने की शक्ति है, पर उस का उपयोग क्या किया जाये यह तो मानव की बुद्धि, उस का आत्मज्ञान और उस के नैतिक या अनैतिक मूल्य ही तय करेंगे। इस लिए आज के वैज्ञानिक युग में मार्गदर्शक के रूप में दर्शन को आगे आना होगा। आज विज्ञान की प्रगति रोकी नहीं जा सकती, न ही उसे रोकना चाहिए। विज्ञान के बिना संसार के काम नहीं चल पाएंगे पर उसे ठीक दिशा देने के लिए दार्शनिक विचारधारा की जरूरत है जो मानव को मानव से जोड़े। पुराने ज़माने में दो व्यक्तियों में द्वेष होता था तो आपस में कुश्ती लड़ कर हार जीत तय कर लेते थे। किसी अन्य का कोई नुक्सान नहीं होता था। आज दो राष्ट्र प्रमुखों में द्वेष हो जाए तो एटम बम चलने की आशंका होने लगती है जो असंख्य निर्दोषों की भी हत्या करने में सक्षम है। इस लिए आज विज्ञान जितना बढ़ रहा है उस से भी आगे आत्मज्ञान को बढ़ाने की अनिवार्यता हो गई है। आज एक देश में आतंक होता है या कोई दुष्चक्र चलता है तो वह यह नहीं कह सकता कि यह मेरे घर का मामला है, दूसरे यही कहेंगे कि तुम्हारे घर का मामला इस लिए नहीं क्योंकि उस से हमारी शान्ति भंग होती है। विज्ञान ने पूरी दुनियां को एक गांव बना दिया है। छोटा सा प्रश्न एक दम अन्तर्राष्ट्रीय बन जाता है इस लिए आज वसुधैव

कुटुम्बकम् की अवधारणा को साकार रूप देने का समय आ गया है। विज्ञान और अहिंसा को जोड़ कर विराट् मानवता के प्रति प्रीति और सद्भावना रखने की आवश्यकता जितनी आज है उतनी शायद कभी पहले नहीं थी। आज यदि विज्ञान और हिंसा का जोड़ हुआ तो पूरा विश्व विनष्ट हो जाएगा। विज्ञान के कारण आज हमारी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि सभी समस्याएं एकदेशीय न रहकर विश्वव्यापक बन गई हैं। हमारे पड़ोसी देश में इमरजैंसी लगी तो विरोधी प्रदर्शन दूर इंग्लैण्ड और अमेरिका में होने लगे। स्पष्ट है कि विज्ञान के युग में देशों, राज्यों, पंथों, धर्मों की सीमाएं टिक नहीं सकतीं। पुराने जमाने में जो समुद्र जापान और अमेरिका को एक दूसरे से अलग करता था आज वही समुद्र उन्हें जोड़ रहा है परिणामस्वरूप आज अमेरिका और जापान पड़ौसी राज्य हैं। आकाश में उड़ने वाले वायुयानों ने सभी देशों को एक दूसरे के निकट ला दिया है। पर यहां विज्ञान ने राष्ट्रों को बाहर से जोड़ने का काम किया है अब दर्शन और अध्यात्म को उन्हें अन्दर से भावनात्मक रूप से जोड़ना है।

आज किसी भी देश की संस्कृति संकुचित दृष्टिकोण रख कर नहीं चल सकती। किसी भी देश की संस्कृति दूसरे देश की संस्कृति से नितान्त अप्रभावित रहे यह भी संभव नहीं है। इस लिए आज विज्ञान और दर्शन से समन्वित विश्वसंस्कृति का विश्वकल्याणकारी स्वरूप होना चाहिए। वह संस्कृति वायुप्रदूषण, जलप्रदूषण, ध्वनिप्रदूषण आदि से विकृत न बन जाए। भोग विलास के साधनों का अनियंत्रित प्रयोग उसे अपसंस्कृति न बना दे। इस दिशा में भारत को आगे आना होगा जहां प्राचीन काल से ही आध्यात्मिक चिन्तन को प्रधानता दी गई है। पश्चिम के विज्ञान और पूर्व के अध्यात्म के संयोग से ही इस संस्कृति का आविर्भाव होगा।

ooo

प्रो. वासुदेवशरण अग्रवाल और वेदविद्या के क्षेत्र में उनका योगदान

जुलाई 1957 की वह घटना मुझे आज भी भूलती नहीं जब मैंने प्रथम बार भारतीय संस्कृति के ज्ञानप्रदीप प्रो० वासुदेवशरण अग्रवाल के दर्शन किये थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भारतीय विद्या महाविद्यालय के बरामदे में खड़ी हुई मैंने एक दुर्बल से शरीर के व्यक्ति को लम्बे लम्बे डगों से एम.ए. फाइनल के कमरे की ओर बढ़ते हुए देखा। भूरे रंग का खद्दर का कुरता, सफेद खद्दर की धोती, पैरों में सादी सी चप्पल, हाथों में मोटे मोटे सन्दर्भ ग्रन्थ। पीछे एक चपरासी पतला सा हाज़िरी रजिस्टर लिए चल रहा था। नयी छात्रा होने के नाते मैंने एक स्थानीय सहपाठिनी से पूछा-यह आगे जाने वाले महानुभाव कौन हैं? उत्तर मिला-"क्या जानती नहीं हो? यह पाणिनि कालीन भारतवर्ष, भारत की मौलिक एकता आदि अनेक ग्रन्थों के प्रसिद्ध लेखक प्राचीन भारतीय कला और पुरातत्त्व के प्रोफैसर डा० वासुदेवशरण अग्रवाल हैं।" मैंने उन के विद्वत्तापूर्ण लेख तो पढ़े थे पर वेश भूषा से देहात का मामूली किसान प्रतीत होने वाला यही व्यक्ति अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का विद्वान् है इस की कल्पना नहीं थी। मैंने मन ही मन उस ऋषितुल्य महापुरुष को प्रणाम किया। तत्पश्चात् चार वर्ष तक उन के चरणों में बैठ कर भारतीय इतिहास संस्कृति और कला का अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कश्मीर के प्राचीन इतिहास और संस्कृति पर कार्य करने की प्रेरणा भी मुझे उन्हीं से मिली। 27 जुलाई 1966 को प्रात:काल आकाशवाणी से उन के देहावसान का समाचार सुना तो लगा कि भारतीय संस्कृति के आलोक का सतत प्रसारण करने वाली ज्ञानदीप की शिखा ही बुझ गई है। भारत माता का वह मातृभक्त पुत्र, जिस ने सभी देशवासियों को मातृभूमि की ममता से परिचित करवाया था, स्वयं इस धरती मां की गोद में सदा के लिए सो गया है। प्राचीन भारतीय संस्कृति के गहरे

सागर से मोती बटोर बटोर कर हमें बांटने वाला वह अद्वितीय गोताखोर उसी सागर में गोता लगाते लगाते लुप्त हो गया है।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का जन्म 7 अगस्त सन् 1904 में उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले के गांव खेड़ा में एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार में हुआ। प्राइमरी तक की शिक्षा गांव खेड़ा में पूरी की। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से बी.ए. तथा लखनऊ विश्वविद्यालय से प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति में एम.ए. तथा एल.एल.बी. की परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। सन् 1931 में उन्होंने मथुरा म्यूज़ियम के क्यूरेटर का कार्यभार संभाला। मथुरा कला का गहन अध्ययन करके उन्होंने चार भागों में मथुरा संग्रहालय का विशाल सूचीपत्र तैयार किया। इस अध्ययन से उन्हें प्रतीति हुई कि भारतीय कला तो दर्पण है जिस में भारतीय संस्कृति के सभी अंग-धर्म, दर्शन, शिल्प स्पष्ट झलकते हैं। 1940 से 1946 तक वे लखनऊ के संग्रहालय के क्यूरेटर तथा 1946 से 1951 तक आर्क्योलौजिकल सर्वे आफ इण्डिया के संग्रहालय विभाग के निरीक्षक रहे। डा. राधाकुमुद मुकर्जी के निर्देशन में उन्होंने 1941 में ''पाणिनि ऐज़ ए सोर्स आफ़ इण्डियन हिस्ट्री'' इस विषय पर शोध ग्रन्थ पूरा किया। इस अद्वितीय शोध प्रबन्ध के पूर्वभाग पर पी.एच.डी. तथा उत्तर भाग पर डी. लिट्. की उपाधियां उन्हें लखनऊ विश्वविद्यालय ने प्रदान कीं। 1951 में उन्होंने काशी हिन्दु विश्वविद्यालय में प्राचीन भारतीय कला और वास्तु कला विभाग के अध्यक्ष तथा प्रोफैसर का पद ग्रहण किया और इसी पद पर कार्य करते हुए कर्मयोगी की तरह शरीर छोड़ दिया। सन् 1964 में मेरे निमन्त्रण पर वे जम्मू पधारे थे। महाराजा डा. कर्ण सिंह ने अपने आवास पर उन के ठहरने की व्यवस्था की। डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट का उद्घाटन उन्होंने ही किया। अपने भाषण में उन्होंने कृषिशब्दावली तथा यहां की पर्वतीय बोलियों की वैदिक शब्दावली पर विशेष चर्चा की। उन्होंने बताया कि डोगरी का शब्द बु'न्न वैदिक बुध्न (वृक्ष की जड़) है।

प्रो. वासुदेवशरण अग्रवाल की बहुमुखी प्रतिभा के दर्शन उनके द्वारा रचित विशाल ग्रन्थ-राशि से होते हैं। वेद, पुराण, संस्कृत साहित्य, हिन्दी साहित्य, लोक साहित्य, धर्म, दर्शन, व्याकरण, इतिहास, कला, संस्कृति, मुद्राशास्त्र और पुरातत्त्व इन सभी क्षेत्रों में उनका योगदान विस्मयकारी है।

वेदविद्या के क्षेत्र में उनके द्वारा लिखित साहित्य उतना विशाल नहीं है जितना अन्य क्षेत्रों में है परन्तु उसकी गहराई को मापना अत्यन्त कठिन है। प्रो. अग्रवाल वेदज्ञों की वेदवित् कोटि में आते हैं, जो वेदों के शब्द और स्थूल अर्थ तक ही नहीं बल्कि उनमें निहित वेद्य सत्य तक पहुंचते हैं। 'परोक्षप्रिया वै देवा: प्रत्यक्षद्विष:' ब्राह्मणग्रन्थों की इस उक्ति को ध्यान में रख कर उन्होंने वेदमन्त्रों के गूढ रहस्यों को खोज कर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का यत्न किया है। वेदों के रहस्य तक पहुंचने की विधि के विषय में वे लिखते हैं-''सत्य तो यह है कि जो हृदय से इस बात का अभिलाषी हो कि वेद का रहस्य ज्ञान समझे, उसे परिभाषाओं के अनन्त वाङ्मय को आत्मसात् करने के लिए उद्यत हो जाना चाहिए। पूर्व हो या पश्चिम, वेदार्थ की समस्या देशकृत या कालकृत नहीं है। वह तो अध्यात्म दृष्टिकोण पर निर्भर है। उसके लिए ब्राह्मण ग्रन्थों की और स्वयं वेद की परिभाषात्मक शब्दावली को स्पष्ट समझना आवश्यक है।''[1]

'वैदिक परिभाषाएं' शीर्षक लेख में प्रो॰ अग्रवाल इस ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं कि इन परिभाषाओं की समझ के अभाव में पश्चिमी विद्वान् वैदिक सृष्टिविद्या के रहस्यों को प्राय: उद्घाटित नहीं कर पाये। पश्चिमी विद्वान् ई॰ जे॰ टामस की स्वीकारोक्ति को उन्होंने उद्धृत किया है-''हमारी व्याख्याओं का मार्ग अवरुद्ध है और कोई भी दृष्टिकोण सर्वसम्मत नहीं हो पा रहा है। लुडविग, केगी, पिशल, गैल्डनर, ओल्डेनबर्ग आदि जर्मन विद्वानों अथवा बेरगेञ, रेग्नो, हेनरी आदि फ्रैंच विद्वानों के कार्य को देख कर यही कहना पड़ता है कि वैदिक अध्ययन की दशा स्वस्थ नहीं है। हमें पश्चिम में इस का भान हो रहा है कि यह महती समस्या सुलझी नहीं है। भाषाशास्त्र अथवा देवताओं के प्राकृतिक रूप को मान कर जो व्याख्याएं की गई हैं वे मृगमरीचिका सिद्ध हुई हैं, यद्यपि कुछ अंग्रेज़ी भाषी लोग अभी उनके पीछे दौड़ रहे हैं।''[2]

प्राचीन भारतीय परम्परा और आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि का समन्वय

प्रो० अग्रवाल वेदविद्याध्ययन के क्षेत्र में प्राचीन भारतीय परम्परा तथा आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण दोनों को साथ लेकर दोनों का समन्वय करते

---

1. *अग्रवाल वा० वेदविद्या पृ० 23*
2. *वेदविद्या पृ० 221*

हुए चलते हैं। उनका अभिमत है कि हम "शान्त मन और जिज्ञासा के भाव से भारतीय दृष्टि और पाश्चात्य दृष्टि की तुलना कर के सृष्टि विद्या के सम्बन्ध में उनके भेद और साम्य को समझने का प्रयत्न करें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पहली आवश्यकता वैदिक परिभाषाओं की बुद्धिपरक व्याख्या है, जिसके द्वारा अर्वाचीन मस्तिष्क उन सूक्तों को अपने ज्ञान के साथ जोड़ सके।"[3]

अपने तीन हिन्दी निबन्ध संग्रहों तथा दो अंग्रेज़ी लेख संग्रहों के माध्यम से उन्होंने यही कार्य किया है। उरुज्योति में तेइस शीर्षकों के अन्तर्गत वैदिक परिभाषाओं और वैदिक सूक्तों की व्याख्याएं हैं जिन में दार्शनिक गम्भीरता भी है और नवीन चिन्तन भी। ये शीर्षक हैं :-

1. कः
2. संप्रश्न
3. रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव
4. एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति
5. द द द
6. ब्रह्मपुरी
7. वैदिक परिभाषा में शरीर की संज्ञाएं
8. ब्रह्मचर्य
9. वाजपेयविद्या
10. च्यवन और अश्विनी कुमार
11. अंगिरस् अग्नि
12. नमः प्राणाय यस्य सर्वमिदं वशे
13. दाक्षायण हिरण्य
14. वरुण की पृश्नि गौ
15. चरैवेति चरैवेति
16. शुनः शेप
17. पशु और मनुष्य
18. पाप्मा वै वृत्रः
19. यऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि
20. अमृत आधार
21. इन्द्र
22. अरुन्धती
23. आश्रमविषयक योगक्षेम

इन में से चार निबन्ध अंगिरस् अग्नि, रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव, संप्रश्न तथा इन्द्र, वेदविद्या पुस्तक में भी सम्मिलित किये गये हैं। वेदविद्या निबन्ध संग्रह के शेष तेइस निबन्ध हैं-

---

3. वेदविद्या पृ० 222

1. वैदिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण
2. ऋषिर्दर्शनात्
3. गुहा
4. अमृत
5. पुरुषप्रजापति
6. आयुष्टोम
7. सविता
8. छंदमर्यादा
9. सोम
10. मेध तत्त्व
11. जिज्ञासा
12. अनन्त या सहस्र
13. विराट् और वामन
14. अश्वत्थ
15. काल
16. देश
17. ऋत
18. सत्य
19. ज्योति
20. पूर्णकुम्भ
21. वैदिक परिभाषाएं
22. प्रजापतिविद्या
23. सरस्वती

वेदरश्मि में, जो 1964 में प्रकाशित हुई, प्रो॰ अग्रवाल के वैदिक सृष्टि-विद्यापरक दस लेख संगृहीत हैं। जिन के शीर्षक हैं :-

1. कः प्रजापति
2. अग्नि
3. हिरण्यगर्भ
4. अग्नि के तीन भ्राता
5. अज एकपाद्
6. गौरी
7. सुपर्ण
8. नासदीय सूक्त
9. पुरुष प्रजापति
10. गायत्री

प्रो॰ अग्रवाल के ये लेख ''स्पार्क्स फ्रौम दी वैदिक फायर'' रूप में पहले अंग्रेज़ी में छपे थे। उनका हिन्दी में अनुवाद भी स्वयं उन्होंने किया है। इन लेखों में अभिव्यक्त गहन चिन्तन का अनुमान प्रो॰ अग्रवाल के इन शब्दों से लगाया जा सकता है जो उन्होंने इस पुस्तक की भूमिका के अन्त में दिये हैं। वे लिखते हैं-''इन लेखों के द्वारा हम पाठकों को उन प्राचीन आश्रमों के उन वातावरणों में ले जाना चाहते हैं, जहां वेदार्थ का मनन किया जाता था। जहां

सब विद्याओं की मूल ब्रह्मविद्या पर लोग विचार करते थे। जहां अमृत अक्षर तत्त्व के जिज्ञासु एकत्र होते थे। जहां परब्रह्म और अवर विश्व के विषय में और उन दोनों को मिलाने वाली परापरविद्या के विषय में मीमांसा की जाती थी। यह वेदों के युग की सर्वोपरि निधि है। इसका अत्यधिक विस्तार है और परिभाषाएं भी अनेक हैं। आशा है इन लेखों में आये हुए संक्षिप्त विवेचन से इस विषय में पाठकों को वैदिक विज्ञान रूपी सूर्य की कुछ रश्मियाँ स्पष्ट दिखाई देंगी। यही इस वेदरश्मि पुस्तक की चरितार्थता है।''[4] उसी भूमिका में वेदव्याख्या के विषय में अपने दृष्टिकोण को वे इस प्रकार स्पष्ट करते हैं–''मेरी दृष्टि में वेद विद्या, सृष्टिविद्या दोनों समान हैं। विश्व अर्थात् आधिदैविक जगत् और आध्यात्मिक प्राणविद्या इन दोनों का स्रोत जो सर्वोपरि देवतत्त्व या ब्रह्मतत्त्व है, वह ही मन्त्रों का लक्ष्य है। इस प्रकार विश्वसृष्टि और व्यष्टिगत प्राणसृष्टि यही वेदार्थ के लक्ष्य हैं। ये दोनों मानव के लिए आवश्यक हैं।''

प्रतीकात्मक व्याख्या

इस निष्ठा से वेदों का अध्ययन इस क्षेत्र में नवीन रस प्रदान करता है। मेरी यह भी आस्था है कि वैदिक मन्त्रों के शब्दों और अर्थों में खींचातानी करने की आवश्यकता नहीं है। मन्त्रों के अर्थ सरल एवं स्वाभाविक हैं, किन्तु उनके मूल में गूढ तत्त्व निहित हैं। जिन्हें निदान-विद्या के द्वारा उद्घाटित किया जा सकता है। इन्हें ही प्रतीक अर्थ भी कहते हैं।''[5] वेदव्याख्या में डॉ० अग्रवाल की प्रतीकात्मक व्याख्या-शैली के दर्शन उनके लेखों में सर्वत्र होते हैं। जैसे इन्द्र शीर्षक निबन्ध में इन्द्र को विश्व में सर्वव्यापक शक्ति तत्त्व का प्रतीक माना है। शरीर में इन्द्रियों का अधिष्ठाता मध्य प्राण भी इन्द्र है। विश्व में मूलशक्ति एक है पर उसके रूप वनस्पति, पशु, मानव आदि अनेक हैं। इसी प्रकार शरीर की मूलभूत शक्ति एक है पर वही चक्षु, श्रोत्र, वाक्, प्राण, मन आदि अनेक रूपों में कार्य करती है। शरीर में इन्द्रियों की सत्ता इस बात का प्रमाण है कि उसके मूल में इन्द्रशक्ति सक्रिय है। इन्द्र का रथ यह शरीर है। इस रथ में दो अश्व हैं प्राण और अपान। उन्हें ही अश्विनी कुमार कहते हैं।[6]

---

4. वेदरश्मि भूमिका पृ० 4.

5. वहीं

6. वेदविद्या पृ० 279.।

सोमशीर्षक निबन्ध में ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर सोम के कई अर्थ बताकर उसे प्रमुख रूप से वीर्य का प्रतीक माना है। यह वीर्य जिन नस नाड़ियों में व्याप्त रहता है वे ही सोमवल्ली हैं। इनको ही केन्द्रीय नाडीजाल कहते हैं। अथर्ववेद में सोम से पूर्ण जिस कलश की बात की गई है वह मस्तिष्क है।[7] यह शरीर ही सोम कूटने का ग्रावा है।[8] नाडीजाल के तीन भाग हैं।

1. सर्वोच्च मस्तिष्क : द्युलोक
2. मध्य मस्तिष्क : अन्तरिक्ष
3. मेरुदण्ड : पृथिवी

अश्वत्थ शीर्षक निबन्ध में अश्वत्थ को संसार का प्रतीक माना है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में ऋग्वेद के ऋषि के उस प्रश्न का उत्तर दिया गया है, जिसमें कहा गया है कि हे विद्वानो! अपने से ही पूछो कि किस महावन के किस महावृक्ष से इस विश्व को बना कर उसे अपने में धारण करके प्रजापति सब का अधिष्ठाता बना हुआ है? तैत्तिरीय ब्राह्मण की उक्ति है-ब्रह्म वन था, ब्रह्म ही वृक्ष था जिससे द्युलोक और पृथिवीलोक तराशे गये हैं। प्रो० अग्रवाल इसकी व्याख्या करते हुए लिखते हैं। ''एक विश्व एक महावृक्ष है। ऐसे कोटि कोटि वृक्ष या ब्रह्माण्डों की जहां सत्ता है, वही ब्रह्मवन है। ब्रह्म का वह कल्पनातीत स्वरूप सबसे परे होने के कारण परात्पर कहा जाता है। परात्पर ब्रह्मवन के एक एक महावृक्ष में सहस्र सहस्र शाखाएं हैं। ......यही अनन्त ब्रह्माण्ड का काव्यमय निदर्शन है।''[9]

भगवद्गीता के पन्द्रहवें अध्याय के पहले दूसरे श्लोकों में उसी संसार रूपी अश्वत्थ का वर्णन है। वहां इसे ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं कहा है।[10] प्रो० अग्रवाल के अनुसार वहां ऊर्ध्व और अधः का अर्थ साधारण ऊपर नीचे नहीं है बल्कि केन्द्र का नाम ऊर्ध्व है और परिधि का नाम अधः है। केन्द्र ही अव्यय है। त्रिभुज के सहस्त्रभुज पर्यन्त बहुरूपी आकृतियाँ केन्द्रबिन्दु के सहारे बनती और

---

7. सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्षि। अथर्व० 9.4.5.

8. बृहन्नद्रिरभवद्यच्छरीरम्। वही 9.4.5

9. वेदविद्या पृ० 162

10. भगवद्गीता 15.1-2.

मिटती हैं पर केन्द्र सदा अविकारी अविचल एकरस अव्यय बना रहता है। केन्द्र के विषय में लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई की कल्पना नहीं होती। पर केन्द्र से ही नाना आकृतियों का विस्तार होता है 'एकं बीजं बहुधा यः करोति के पीछे यही तथ्य है।

केन्द्र अव्यक्त है, अनिरुक्त है, परिधि देखने में विस्तृत पर केन्द्र की अपेक्षा सदा अल्प है क्योंकि परिधि के परिमाण और वर्णन की इयत्ता है, केन्द्र की नहीं। केन्द्र या स्व की ओर गति समाधि है, परिधि या संसार की ओर गति व्याधि है। ऊर्ध्वमूल और अधः शाखा वाले अश्वत्थ रूप संसार में दोनों की सत्ता है। ज्ञानियों की दृष्टि उसके ऊर्ध्व या अमृतभाग का ग्रहण करती है।[11]

वैदिक परिभाषाएँ शीर्षक निबन्ध में अश्वत्थ-विद्या को 'पंचपुण्डीरा विद्या' भी कहा है। पुण्डीर का अर्थ है पर्व या पोरी। मनुष्य शरीर विश्वनिर्माता प्रजापति के विश्वरूपी वृक्ष की एक टहनी है। इसी शाखा पर जीवरूपी भोक्ता सुपर्ण बैठा है और उसी के साथ ईश्वर रूपी साक्षी सुपर्ण भी है। दोनों सदा एक साथ रहने वाले सयुज सखा हैं। इस शरीर रूपी शाखा की पांच पोरियाँ हैं : 1. इन्द्रियों वाला स्थूल संस्थान, 2. इसके भीतर मन, 3. मन के भीतर बुद्धि 4. बुद्धि से आगे महान् और उससे भी आगे की पहली पौरी अव्यक्त आत्मा है। यह तो शाखा का पिण्डगत रूप है।

दूसरे ब्रह्माण्डगत रूप में एक एक विश्व महान् अश्वत्थ वृक्ष की एक एक शाखा है। स्वयम्भू, परमेष्ठी, सूर्य, चन्द्र, पृथिवी ये उसके पांच पर्व हैं। ये सृष्टि के विकास की पांच अवस्थाविशेष हैं जो क्रमशः सूक्ष्म से स्थूल भाव में प्रकट होती हैं।

सृष्टि विद्या का अध्ययन

इस प्रकार अनेक वैदिक परिभाषाओं की व्याख्याएँ प्रो॰ अग्रवाल ने की हैं। उनके द्वारा की गई, ऋग्वेद के नासदीय सूक्त, अस्यवामीय सूक्त तथा अथर्व वेद के पृथिवीसूक्त की व्याख्याएँ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। ऋग्वेद के ये दोनों सूक्त सृष्टिविद्या के अध्ययन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। अस्यवामीय सूक्त तथा

---

11. वेदविद्या पृ॰ 165-166.

नासदीय सूक्त जिनकी गणना पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों द्वारा क्लिष्टतम सूक्तों में की जाती है, उनके अर्थों का उद्‌घाटन प्रो॰ अग्रवाल ने प्रतीकात्मक व्याख्या द्वारा प्रस्तुत किया है।

नासदीय सूक्त की व्याख्या करते हुए प्रो॰ अग्रवाल लिखते हैं[12] "इसमें सृष्टिविद्या का प्रतिपादन है। वैदिक साहित्य में यह अपनी समानता नहीं रखता। विश्वसाहित्य में भी दार्शनिक तत्त्वों का एकत्र ऐसा संक्षिप्त विवेचन दुर्लभ है।"[13]

प्रो॰ अग्रवाल इस सूक्त के मन्त्रों में सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में 1. सदसद्‌वाद, 2. रजोवाद, 3. व्योमवाद, 4. अपरवाद, 5 आवरणवाद, 6. अम्भोवाद, 7. अमृतमृत्युवाद, 8. अहोरात्रवाद, 9. दैववाद, 10. संशयवाद को प्रस्तुत करते हुए उन सब की व्याख्या करते हैं। ऋग्वेद के अन्य मन्त्रों, अथर्ववेद के मन्त्रों तथा शतपथ ब्राह्मण के साक्ष्य के आधार पर इन वादों का वर्णन उन्होंने किया है। सदसद्‌वाद की पुष्टि ऋग्वेद के दशम मण्डल के पाँचवें सूक्त के सातवें मन्त्र से की है। असत् और सत् दोनों परम व्योम में विद्यमान थे। इस प्रसंग में वे ऋग्वेद के दशममण्डल के बहत्तरवें सूक्त के दूसरे मन्त्र को उद्‌धृत करते हैं जहां कहा है–

"देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदजायत देवों के पूर्व युग में असत् से सत् का जन्म हुआ। असत् और सत् क्या हैं? इस विषय में शतपथ ब्राह्मण का हवाला देते हुए बताया है कि असत् का अर्थ है ऋषिसृष्टि और ऋषिसृष्टि का अर्थ है प्राणसृष्टि। प्रो॰ अग्रवाल का कथन है कि सत् और असत् इन दोनों शब्दों का भिन्न-भिन्न अभिप्राय दार्शनिकों को इष्ट था।[14]

नासदीय सूक्त का दूसरा सिद्धान्त रजोवाद है। रजस् की व्याख्या में दो मत दिये हैं-एक के अनुसार लोक की संज्ञा रजस् है और सात लोक हैं-भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्। इन्हें ही पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, प्राण और चेतना भी कहते हैं। दूसरे मत के अनुसार रजस् के दो प्रकार हैं-

---

12. ऋग्वेद 10,129.1-7

13. वेदरश्मि पृ॰ 67

14. प्राणो वै समञ्चनप्रसारणम् (श॰ ब्रा॰ 8.1.4.10)

शुक्ल और कृष्ण। रजस् का अर्थ है गति तत्त्व। इस विश्व की जो गति है (या स्पंदन है) वह एक समञ्चन और प्रसरणात्मक गति के रूप में प्रकट हो रही है, जिसे शतपथ ब्राह्मण में प्राण कहा है।

तीसरा सिद्धान्त व्योमवाद है। इस विश्व का जो मूलभूत स्थिर स्रोत है उसे परमव्योम कहा गया है। वह अजायमान है अमृत है। उस का उलटा दूसरा तत्त्व अपरमव्योम है जिसे मर्त्य कहते हैं। परमव्योम से जो विश्व जन्म लेता है वह सर्वप्रथम भौतिक आकाश तत्त्व है और वही क्रमशः पंच भूतों के रूप में प्रकट होता है।

चौथा वाद अपरवाद है। पर और अपर, ये दोनों सापेक्ष सिद्धान्त हैं। नासदीय सूक्त के पांचवें मन्त्र में इसे परस्ताद् और अवस्ताद् कहा है।[15] पुरुषसूक्त में परस्ताद् को ऊर्ध्व और अवस्ताद् को अधः कहा है। यह जो विश्ववृक्ष को ऊर्ध्वमूल कहा है उसका यही अर्थ है कि इस वृक्ष के मूल व्योम या परतत्त्व में स्थिर हैं। प्रो० अग्रवाल के अनुसार जो केन्द्र है वह पर है और जो मंडल है वह अपर है।

पाँचवां सिद्धान्त आवरणवाद है जो 'किमावरीवः कुहः कस्य शर्मन्' में वर्णित है। जो भौतिक है वह सीमित होता है यही आवरणवाद का तत्त्व है। इसी का दूसरा नाम माया है। पौराणिक साहित्य तथा ब्राह्मणग्रन्थों की सहायता लेकर वह इस आवरण की व्याख्या करते हैं। नासदीय सूक्त में इस आवरण को शर्म भी कहा है जिसका अर्थ है रक्षा। प्रत्येक आवरण एक रक्षाकवच होता है।

छठा अम्भोवाद का सिद्धान्त है जिसके अनुसार सृष्टि का आरम्भिक तत्त्व 'जल' कहा है अम्भः, आपः, सलिलं, समुद्रः, ऋतम् ये सभी लगभग पर्याय हैं।

डॉ० अग्रवाल के अनुसार जल या आपः का अर्थ है वह स्थितिशील अवस्था जिस में सम्पूर्ण पृथिवी लीन थी और अभी व्यक्त नहीं हो पाई थी। उसी प्रकार की अव्यक्त या स्थितिशील व्यवस्था से गति या प्रकाश का जन्म

15. रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात्। ऋग्वेद 10. 129.5

होता है। जल ही मातृतत्त्व था जिस ने अग्नि को जन्म दिया। इसीलिए अग्नि को अपांगर्भः, अपां नपात् कहा है। ऋग्वेद के अनुसार वैश्नानर अग्नि जलों में प्रविष्ट था।

वैश्वानरो यास्वग्निः प्रतिष्ठस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु।[16]
अग्नि को ऋत से सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ कहा है।[17]

ऋत का धरातल अथवा आपः और अम्भः का मूल तत्त्व सोम है और उस का विपरीत तत्त्व अग्नि है।

प्रो॰ अग्रवाल अग्नि, इन्द्र, सूर्य, मन, अहं, यज्ञ, अमृत, सत्य, देव, अक्षर, काल, प्रजापति, प्राण, ज्योति, पिता, अहः संवत्सर ये सब प्राण–अग्नि की संज्ञाएं मानते हैं।

इनके विपरीत ऋत, आपः, अम्भः, सलिल, समुद्र, वरुण, असुर, अहि, वृत्र, मृत्यु, अपान, पृथिवी, माता, रात्रिएं तम आदि सोम की संज्ञाएं हैं।[18]

सातवाँ सिद्धान्त अमृतमृत्युवाद है। स्थिति तत्त्व अमृत है गतितत्त्व मृत्यु है। देव अमृत के प्रतीक हैं और भूत मृत्यु के। अग्नि का सम्बन्ध दोनों से है। देवाग्नि सूर्य में है, भूताग्नि पृथिवी में है। जन्म अमृत का रूप है मृत्यु मर्त्य का। दोनों एक ही वृत्त के अर्ध अर्ध भाग हैं और इनसे ही कालचक्र की गति पूर्ण होती है।

आठवां अहोरात्रवाद है। अहोरात्र काल की एक इकाई है, जिसमें ब्रह्म की समस्त शक्ति निहित है। वह शक्ति स्वयं संवत्सर है। यह पृथिवी को सूर्य के चारों ओर घुमा रहा है। मध्यस्थ केन्द्र में जो सूर्य है वही प्रजापति है उसे वैदिक परिभाषा में अश्व भी कहा जाता है। वह सबको गति प्रदान करता है। ज्योति और तम, कृष्ण और शुक्ल, अग्नि और सोम, सृष्टि और प्रलय, जन्म और मृत्यु, स्वर्ग और पृथिवी ये अहोरात्र के ही विविध रूप हैं। रात्रि स्थिति की प्रतीक है। अहः गति का प्रतीक है, रात्रि निद्रा है, अहः जागरण है।

---

16. ऋग्वेद 4.49.4.

17. अग्निर्हि नः प्रथमजा ऋतस्य। ऋग्वेद 10.5.7

18. वेदरश्मि पृ॰ 71.

पौराणिक प्रतीक शेषशायी विष्णु की व्याख्या भी प्रो॰ अग्रवाल इसी प्रसंग में करते हैं। विष्णु का अर्थ है विवेष्टि। विवेष्टि व्याप्नोति इति विष्णुः। व्याप्त होने की कल्पना तभी सम्भव है जब उस के लिए कोई आवर्तन या पात्र हो, जिसमें वह तत्त्व व्याप्त हो सके। इन सात तत्त्वों का आधार वह अनन्त तत्त्व है जिसे अनन्त, शेष भी कहते हैं। पुराणों की परिभाषा में जो लोक हैं वह सर्प कहलाते हैं और उन अनन्त लोकों की समष्टि में वह एक विश्व समाया हुआ है अर्थात् विष्णु अनन्त की शय्या पर सोते हैं। यह सान्त और अनन्त के सम्मिलन की संकल्पना है।[19]

दैववाद के अनुसार देवों के जन्म के साथ ही यज्ञ का आरम्भ होता है। विश्व एक सतत यज्ञ है। अग्नि इसका देवता है। जहां अग्नि है वहां सब देवों की स्थिति है। देवता कितने हैं ? उनका स्वरूप क्या है? इस विषय में प्रो॰ अग्रवाल लिखते हैं- ''एक मत यह था कि अग्नि और सोम दो ही मूलभूत देवता हैं। अग्नि देवों को जन्म देता है और सोम भूतों को।''[20] अग्नि के जन्म का पहला तत्त्व है मानस दूसरा प्राण और तीसरा वाक् या पंचभूत। मानस तत्त्व को ब्रह्माग्नि, प्राणतत्त्व को देवाग्नि और वाक् तत्त्व को भूताग्नि या पृथिवी कहते हैं। दैववाद के अनुसार समस्त सृष्टि देवों अर्थात् दिव्यशक्तियों की अभिव्यक्ति है। संशयवाद से तात्पर्य ऋषियों की जिज्ञासा से है कि सृष्टि कहाँ से उत्पन्न हुई? कब हुई? कैसे हुई? बड़े साहस के साथ ऋषि का कथन है कि पता नहीं इस सृष्टि का अध्यक्ष जो इसे जन्म देता है वह भी इसे जानता है या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। जो देव हैं वे भी इस सृष्टि के बाद हुए इसलिए कौन जानता है कि यह कहाँ से उत्पन्न हुई।[21]

सृष्टिवाद सम्बन्धी इन वादों का संकेत करते हुए नासदीय सूक्त के ऋषि ने सृष्टि के मूलतत्त्व की व्याख्या भी दूसरे तीसरे मन्त्रों में कर दी है। सृष्टि से पूर्व मूल कारण वह एक था जिसे तदेकम् कहा है। विश्व को इदम् कहा है। उस परात्पर ब्रह्म ने श्वास प्रश्वास की प्रक्रिया आरम्भ की, यह प्राणन क्रिया

---

19. वहीं

20. वहीं

21. इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद।। ऋग्वेद 10.129.7

किसी भौतिक तत्त्व पर आश्रित नहीं थी। इस लिए इसे आनीत् अवातं कहा है। इसे ब्रह्म की स्वधा या स्वशक्ति कहा है। यह विश्व तब सलिल के नीचे था। उस अवस्था में पाँच भूत जलों के भीतर अज्ञात अवस्था में छिपे थे। तीसरे मन्त्र में कहा है कि तुच्छ्य से आभु अपिहित था। प्रो० अग्रवाल तुच्छ्य और आभु दोनों को पारिभाषिक शब्द बताते हुए इनकी व्याख्या सीमाभाव और ब्रह्म देते हैं। तुच्छ्य मण्डल है और आभु केन्द्र। विश्व की रचना के लिए सीमाभाव आवश्यक है। मण्डल को ही सीमाभाव कहते हैं। केन्द्र अव्यक्त है, विश्व व्यक्त है।

इसी प्रकार अस्यवामीय सूक्त की व्याख्या करते हुए प्रो० अग्रवाल सृष्टिविद्या से सम्बद्ध अनेक विद्याओं का विवेचन करते हैं। ऋषि प्रश्न उपस्थित करता है कि इस विश्व की नाभि या केन्द्र कहाँ है और उत्तर देता है कि यज्ञ ही इस विश्व की नाभि या केन्द्र है। उनके अनुसार नाभि, हृदय, उक्थ, ऊर्ध्व, क, गर्भ, मध्य, ये सब केन्द्र की संज्ञाएँ हैं। यही एकम् है जो अपने विष्कम्भ के रूप में बनता है और उससे ही मण्डल की सृष्टि होती है। प्रो० अग्रवाल का विचार है कि वैदिक ऋषि नाना प्रकार के संकेतों से सृष्टि के मूल तत्त्वों की ओर हमें ले जाते हैं। गौ, अश्व, अज, एकपाद्, अहिर्बुध्न्य, मही माता इन सब प्रतीकों के माध्यम से सृष्टि प्रक्रिया की व्याख्या वेदों में हुई हैं। उनके अनुसार जो इन प्रतीकों का अर्थ जानता है वही ऋग्वेद के दर्शन के प्रति न्याय कर सकता है।

ब्रह्म अन्तिम तत्त्व है जिसमें कोई विकार या परिवर्तन नहीं होता वही सृष्टि का मूल है। वह एक है और कुछ लोग उसे ही बहुधा नामों से और रूपों में देखते हैं।

अस्यवामीयसूक्त को गैल्डनर ने ब्रह्मोद्य कहा है जिस का आशय है कि इसके अधिकांश मन्त्र पहेली या बुझौवल के रूप में हैं। डॉ० कुन्हनराजा भी इस सूक्त को पहेलियों से भरा मानते हैं, जिनके अर्थ धुंधले पड़ गये हैं और जिनकी कुंजियाँ खो गई हैं। प्रो० अग्रवाल इस सूक्त की शैली की गम्भीरता को तो स्वीकारते हैं पर इस बात को नहीं मानते कि ऋषि दीर्घतमस् ने जानबूझ कर इस सूक्त को क्लिष्ट बनाया है। उनके मत में इस सूक्त को ऋग्वेदीय

विद्याओं की अनुक्रमणिका कहा जा सकता है। ऋषि ने जिस ऊंचे धरातल से सृष्टि के मूलभूत तत्त्वों का परिगणन चाहा था वहां तक ऊंचे उठ कर सोचा जाए तो सूक्त के अर्थ बहुधा प्रसन्न हो उठते हैं। प्रो॰ अग्रवाल के अनुसार इस सूक्त में निम्नलिखित बत्तीस विद्याओं का उल्लेख है।[22]

	मन्त्रसंख्या
अग्नि (के तीन भ्राता) विद्या	1
सप्ततन्तुविद्या	5
अज	6
गोविद्या	7, 8, 9, 27-29
अविचाली ऊर्ध्व·तत्त्व	10
वक्रविद्या	11, 12, 13, 14
प्राणविद्या	15
स्त्रीपुमान् विद्या	16
परापरविद्या	17-19
सुपर्णविद्या	20-22
त्रिसुपर्णविद्या	23-25
धर्मविद्या	26
जीव विद्या	30
गोपा विद्या	31
मातृपितृविद्या	32-33
यज्ञविद्या	34-35
सप्तार्धगर्भविद्या	36
ऋतस्य प्रथमजा वाक्	37
मर्त्यामर्त्यायोनिविद्या	38
अक्षरविद्या	39
भगवती अघ्न्या गोविद्या	40

22. वेदरश्मि पृ॰ 36

सूक्त के प्रथम मन्त्र में अग्नि के तीन भ्राताओं का उल्लेख है।[23] निरुक्त भाष्य के अनुसार यास्क ने अग्नि, वायु और आदित्य को तीन भ्राता माना है। सायण की व्याख्या भी यही है। सायण के पूर्ववर्ती आत्मानन्द की टीका के अनुसार ये तीन भाई चित्स्वरूपक आत्मा की तीन अवस्थाएँ जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति हैं।[24] प्रो॰ अग्रवाल इन्हें जीवनतत्व के तीन लक्षण वृद्धितत्त्व, अन्न अन्नाद तत्त्व और प्रजनन तत्त्व मानते हैं। जहां जीवन है वहां छोटे से बड़ा होना अवश्यम्भावी है। एक को बालक दूसरे को वृद्ध कहा जाता है। जो वामन है वही विराट् रूप में आता है।

'वामनो ह विष्णुरास' (शतपथ 1.2.5.5.) वामन और विराट, केन्द्र और परिधि, बिन्दु और मण्डल, अणु और महान् इन द्वन्द्वों में महान् भेद दिखाई देता है पर तत्त्वतः दोनों एक हैं। दोनों का अन्तर वृद्धि या महिमा भाव पर है। इस मन्त्र में वाम और पलित इन दो शब्दों से इसी ओर संकेत किया गया है।[25]

जीवन का दूसरा लक्षण अन्न ग्रहण है। जहां प्राण की सत्ता है वहां अन्न

---

23. अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम्। ऋग्वेद 1.164.1

24. वेदरश्मि पृ॰ 37

25. वहीं पृ॰ 40-41

और अन्नाद का नियम अनिवार्य है। फल, शाक, धान्य, दुग्ध आदि समस्त अन्न सोम के रूप हैं। इसी सोम को खाकर प्राणाग्नि जीवित रहती है। इसलिए अग्नि का दूसरा भाई अश्न: कहा है। अन्न खाना और उससे शक्ति उत्पन्न करना यह प्रकृति सिद्ध यज्ञ प्राणी शरीर का अनिवार्य धर्म है। यही अग्नि का मंझला भाई सब के भीतर है। जो निरन्तर खाता है और पचाता है। अग्नि का तीसरा भाई घृतपृष्ठ है 'रेतो वै घृतम्' (शत॰ 9.2.3.44) जीवन का तीसरा लक्षण रेतस् या प्रजनन है। जीवन का यही स्वभाव है कि वह जिस बीज से उत्पन्न होता है, स्वयं परिपक्व होने पर उसी प्रकार के बीज का निर्माण करता है। बीज से प्रारम्भ हो कर पुन: बीज तक पहुँचना यही जीवन का चक्र है। शरीरस्थ प्राणाग्नि और घृत या रेत तत्त्व का घनिष्ठ सम्बन्ध है। वही रेत तत्त्व अग्नि का तीसरा भाई है।

प्रो॰ अग्रवाल अग्नि के इन तीन भाइयों की पहचान पुराणों के त्रिदेव विष्णु, ब्रह्मा, शिव के रूप में भी करते हैं। वृद्धि का नियम विष्णु है, अन्न अन्नाद नियम ब्रह्मा है, प्रजनन नियम शिव है। (शिव अर्धनारीश्वर है) अग्नि को सप्त पुत्र कहा है। मन, प्राण और पंचभूत ये ही सात पुत्र हैं। एक ही मूल प्राणाग्नि इन सात रूपों में विभक्त होकर शरीर को धारण करती है। अस्यवामीय सूक्त के इस प्रथममन्त्र में जिस अग्नि के तीन भाइयों और सात पुत्रों का उल्लेख है, वह वैश्वानर अग्नि है, जिस की पहचान प्रो॰ अग्रवाल जीवन तत्त्व से करते हैं। मन्त्र का अन्तिम भाग 'अत्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम्' सूचित करता है कि इस रहस्यमय प्राणाग्नि का दर्शन इसी शरीर में सम्भव है।

जो मूल में एक है वही पहले त्रिक भाव से आता है और त्रिक से मन, प्राण और पंच भूतों का सप्तधा रूप बनता है।

इस प्रकार सृष्टिविद्या से सम्बद्ध अनेक वैदिक प्रतीकों और पारिभाषिक शब्दों की व्याख्याएँ प्रो॰ अग्रवाल के ग्रन्थों में मिलती हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध परम्परागत अर्थों को दृष्टि में रख कर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उनकी व्याख्या करते हुए उन्होंने वैदिक अध्ययन के क्षेत्र में एक नया मार्ग प्रशस्त किया है।

सृष्टिविद्या से सम्बद्ध ऋग्वेद के सूक्तों के अतिरिक्त अथर्ववेद के पृथिवी

सूक्त की व्याख्या प्रो॰ अग्रवाल की वैदिक अध्ययन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण देन है। अथर्ववेद के बारहवें काण्ड का त्रेसठ मन्त्रों का यह सूक्त प्रो॰ अग्रवाल को इतना प्रिय था कि उन की अनेक कृतियों में इसका प्रयोग हुआ है। 'माता भूमिः पुत्रोहं पृथिव्याः' तो उनका प्रेरणा स्रोत ही बन गया दीखता है। इकतीस दिसम्बर 1943 को श्री बनारसी दास चतुर्वेदी को लिखे पत्र में इस सूक्त के विषय में उन्होंने अपने भाव इस प्रकार प्रकट किये हैं-

राष्ट्रभक्ति का प्रेरणासूत्रअथर्व वेद का पृथिवी सूक्त (12.1.1-63) पृथिवीपुत्र की भावना का आदि स्रोत है।

उसके अध्ययन से अनमोल सामग्री मिली है। भारतीय इतिहास और संस्कृति के अध्ययन में सबसे पहले पृथिवीसूक्त के 63 मन्त्रों का अध्ययन करा देना चाहिए और सामूहिक रूप से उसे कंठ कराना चाहिए। राष्टसंवर्धन की सभी योजनाओं और भावनाओं का वह सूक्त अक्षय्य स्रोत है। किसी पूर्व युग में सुन्दरी सूर्या के विवाह-महोत्सव में अमर्त्य देवों ने जिस कमल की गन्ध को उत्पन्न किया था, उसे आप आज फिर सूंघना चाहते हैं तो पृथिवी-सूक्त को देखिए।[26] पृथिवी पुत्र, भारत की मौलिक एकता, माता भूमि तथा वाग्धारा इन चार निबन्ध संग्रहों में प्रो॰ अग्रवाल ने इस सूक्त की व्याख्या सम्मिलित की है।

वे मानते हैं कि स्थूल नेत्रों से देखने वालों के लिए यह पृथिवी मिट्टी, पत्थरों और चट्टानों का जमघट है किन्तु जो मनीषी हैं, जिनके पास ध्यान का बल है वे भूमि के हृदय को देख पाते हैं। मातृभूमि के साथ तादात्म्य की प्राप्ति वस्तुतः अध्यात्म साधना का ही रूप है। वैदिक ऋषि के शब्दों में मातृभूमि का हृदय परम व्योम में स्थित है और सत्य से घिरा हुआ अमर है।[27] पृथिवी को 'धर्मणा धृता' धर्म के बल पर टिकी हुई भी कहा है। प्रो॰ अग्रवाल के अनुसार सत्य और धर्म ही ऐतिहासिक युगों में मूर्तिमान् होकर राष्ट्रीय संस्कृति का रूप ग्रहण करते हैं। संस्कृति का इतिहास सत्य से भरे हुए मातृभूमि के हृदय की ही व्याख्या है। पृथिवी को धारण करने वाले इन सांस्कृतिक तत्त्वों का उल्लेख ऋषि ने सूक्त के प्रथम मन्त्र में कर दिया है।

26. पृथिवीपुत्र पृ० 194-95

27. यस्याः हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः। अथर्ववेद 12.1.8

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्नी उरुं लोकं पृथिवी नः करोतु॥

प्रो॰ अग्रवाल इस मन्त्र में निहित तीन महत्त्वपूर्ण बातों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। प्रथम यह कि सत्य, ऋत, दीक्षा, तप आदि शाश्वत तत्त्व जिस तरह आध्यात्मिक जीवन के आधार हैं उसी तरह राष्ट्रीय जीवन के भी आधार हैं, उन्हीं से संस्कृति का निर्माण होता है, दूसरी यह कि राष्ट्र के साथ पृथिवी का सम्बन्ध संस्कृति के द्वारा ही स्थिर रहता है। तीसरी यह कि सांस्कृतिक विजय के मार्ग में पृथिवी की दिक् सीमायें अनन्त हो जाती हैं। यही पृथिवी का उरुलोक प्रदान करना है।[28]

पृथिवी के स्थूल रूप का सौन्दर्य भी अतीव रमणीय है। उन्नत प्रदेश, निरन्तर बहने वाली नदियां, हरे भरे समतल मैदान, छोटे गिरिजाल और हिमराशि का श्वेत मुकुट बांधे हुए महान् पर्वत, इन सब का वर्णन पृथिवी सूक्त में है। उत्तर के उच्च पर्वतों की तरह ही मातृभूमि का सम्बन्ध दक्षिण के महासागरों से भी है, जिन का जल ही मेघों के रूप में बरस कर नदियों, निर्झरों में बहता है और अन्न को उत्पन्न करने में सहायक होता है।[29] उत्तर और दक्षिण का यह भौतिक सम्बन्ध बहुत गहरा है। वनस्पतिजगत् और पशुपक्षिजगत् भी मातृभूमि की सन्तान हैं।[30] मातृभूमि का महत्त्व उसकी खनिज सम्पत्ति से भी है, जिस से राष्ट्र का कोश भरा रहता है। यह पृथिवी विश्वंभरा, वसुधानी और हिरण्यवक्षा है। यह रत्नों, मणियों और सुवर्ण को देने वाली है।[31] इस भूमि पर बसे हुए नगर ग्राम देवों ने बनाये हैं। यहां के दूरस्थ भागों को जोड़ने वाले राजमार्ग हैं, जहां छकड़े भी चलते हैं और रथ भी। भूमि के स्थूल शरीर की सजावट इन सब से है, परन्तु तप, ज्ञान और संकल्प से युक्त जन समूह उसके रूप की विशेष समृद्धि करते हैं। सूक्त के पैंतालीसवें मन्त्र की व्याख्या करते हुए प्रो॰ अग्रवाल लिखते हैं– "हमारे राष्ट्रीय जीवन का एक बहुत बड़ा सत्य जो इस सूक्त में सचाई के साथ स्वीकार किया गया है, वह यह है कि भाषा,

---

28. पृथिवीपुत्र पृ॰ 31.

29. यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु। अथर्ववेद 12.1.2.

30. वही 12. 1.3.

31. वही 12. 1. 3.

जन और धर्म की दृष्टि से हमारी अनेक विभिन्नताएं हैं। यहां अनेक प्रकार के जन रहते हैं जो अनेक भाषाएँ बोलते हैं और नाना धर्मों को मानने वाले हैं।[32] इन विभिन्नताओं के होते हुए भी उन सब में एक ही तार इस भावना का पिरोया हुआ है कि वे सब पृथिवीपुत्र हैं और पृथिवी उनकी माता है। प्रो॰ अग्रवाल के अनुसार वैदिक ऋषि की दृष्टि में यह ऐक्य भाव दो रूपों में प्रकट होता है। एक तो उस गन्ध के रूप में है जो पृथिवी के प्रत्येक परमाणु में, औषधियों में, वनस्पतियों में, पशु-पक्षियों में, इस धरती के स्त्री पुरुषों में सर्वत्र बसी हुई है। मातृभूमि के पुत्र और पुत्रियां अपने पौरुष और लावण्य में उसी गंध को धारण करते हैं। मातृभूमि की यह छाप हम सब के मस्तक पर लगी है और हम विश्व के किसी भी भाग में जाएँ अपनी यही पहचान हमारे साथ रहती है कि हम भारतीय हैं। ऐक्य का दूसरा रूप अग्नि या ज्योति के रूप में सर्वत्र व्याप्त है। मर्त्य लोग अपनी साधना से उस अग्नि को प्रज्वलित करके अमर्त्य बनते हैं। मातृभूमि के जिन पुत्र-पुत्रियों में यह अग्नि प्रकट हो जाती है वे अमृतत्व या देवत्व भाव को प्राप्त करते हैं। वस्तुतः भावना की अग्नि ही देवता है, जिसके द्वारा मातृभूमि के पुत्र देवत्व का भाव प्राप्त करते हैं।

आठवें मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि वह भूमि जिस का हृदय अमृत और सत्य से ढका हुआ है, उत्तम राष्ट्र में हमारे लिए तेज और बल को देने वाली हो। राष्ट्र के स्वरूप के विषय में प्रो॰ अग्रवाल कहते हैं कि भूमि राष्ट्र का शरीर है, जन उसका प्राण हैं और जन की संस्कृति उसका मन है। शरीर प्राण और मन इन तीनों के सम्मिलन से ही राष्ट्र का निर्माण होता है।

भारतराष्ट्र के इस वेदकालीन राष्ट्रगान के अध्ययन के द्वारा प्रो॰ अग्रवाल ने मातृभूमि के स्वरूप तथा भूमि और जन के बीच 'माता भूमिः पुत्रोहं पृथिव्याः' की सशक्त अनुभूति का परिचय दिया है।

○○○

---

32. वही 12. 1. 6; 12. 1.44।
जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती॥
अथर्ववेद 12.1.45।

वैदिक–हड़प्पा संस्कृति में धार्मिक वृक्ष अश्वत्थ

हड़प्पा एवं मोहेंजोदड़ो से प्राप्त कई मुद्राओं पर एक देवमूर्ति दो फांकों वाले अश्वत्थ वृक्ष के भीतर खड़ी दिखाई गई है। मोहेंजोदड़ो की मुद्रा संख्या 430 में मुद्रा के उपरिभाग में दायीं ओर एक पीपल का पेड़ वृत्ताकार आलवाल से उभर रहा है। इस के अन्दर बायीं ओर मुंह किये एक देवमूर्ति है। देवता के सिर पर त्रिशूलाकार शृङ्गमुकुट है। सिर के पीछे कृत्रिम चोटी लटक रही है। तीन तीन पत्ते वृक्ष के दो फांक तने के बाहर की ओर निकले हुए हैं। लगता है कि वृक्ष दो भागों में फट गया है और उस के भीतर से देवता प्रकट हो गया है। देवता के सामने एक भक्त या देवपुरोहित त्रिशूलाकार मुकुट और नकली चोटी धारण किये हाथ जोड़ कर प्रार्थना कर रहा है। उस के घुटने के पास एक काष्ठपीठ है जिस पर कुछ बलि रखी है। उस देवपुरोहित के पीछे एक पक्षिमुख बकरा खड़ा है। मुद्रा के निचले भाग में सात मनुष्य बायीं ओर को मुंह किये खड़े हैं। जान मार्शल तथा मैके दोनों विद्वान् वृक्ष के अन्दर की देवमूर्ति तथा सात देवमूर्तियों को देवियां मानते हैं। जान मार्शल के मतानुसार तो मातृदेवी ही सिन्धुसभ्यता की परम देवता थी। पर कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार (जिन में पुरातत्त्ववेत्ता केदारनाथ शास्त्री सम्मिलित हैं।) सिन्धु संस्कृति के देवगण में नर अंश प्रधान था। अश्वत्थ निवासी पुंलिङ्ग देवता परमदेवता था। इस 430 संख्या मुद्रा पर टिप्पणी करते हुए जान मार्शल लिखते हैं "पीपल की शाखाओं में खड़ा देवता बहुत छोटा और बेढब बना हुआ है। परन्तु पुंलिङ्ग लक्षणों से हीन होने के कारण और इसलिये कि भारत में वृक्ष देवता प्राय: स्त्रीलिङ्ग हैं और देवदूतों की पंक्तिबद्ध सात मूर्तियां भी स्त्रीलिङ्ग प्रतीत होती हैं, यही मान लेना ठीक है कि पीपल के अन्दर खड़ा देवता देव नहीं किन्तु देवी है। पंक्ति बद्ध नीचे खड़ी सात मूर्तियां भी स्त्रीलिङ्ग प्रतीत होती हैं। मेरे विचार में ये प्रधान देवी की दासियां अथवा निम्न कोटि की सहायक देवियां हैं। उन के सिरों पर पंख के समान वस्तुएं शायद वृक्ष की शाखायें है जैसा

कि देवदार की पूजा के समय काफिरीस्तान के लोग आज भी ऐसी शाखाओं को अपने सिरों पर पहनते हैं।''[1]

इसी विषय में डा. मैके लिखते हैं ''इस में सन्देह नहीं कि यद्यपि वृक्षाधिष्ठातृदेवता एक देवी है। उस के सामने प्रार्थना करने वाली मनुष्याकृति भी देवी ही प्रतीत होती है क्योंकि उस ने प्रधान देवी के समान ही शिरोवेष्टन पहना है। नीचे के रिक्त स्थान में अंकित सात मानुषी मूर्तियां भी निम्नकोटि की देवियां ही हैं। सम्भवतः वे प्रधान देवी की पुत्रियां हैं।''[2]

इस प्रकार इन दोनों विद्वानों के विचार में मुख्याधिष्ठातृदेवता, उपासक और सात मानुषीमूर्तियां सभी स्त्रियां हैं। केदारनाथ शास्त्री के मतानुसार वे सब पुरुष हैं। मार्शल ने इन्हें स्त्रीरूप मानने में दो कारण दिये हैं – प्रथम यह कि मूर्तियों के सिरों के पीछे लम्बी चोटियां हैं और दूसरा यह कि शरीर के ऊर्ध्वभाग में उन्होंने कोटनुमा वस्त्र पहना है। ये दोनों कारण समुचित नहीं। सिन्धु संस्कृति के देवगण और देवपुरोहित चोटी धारण करते थे। जिसे तिरछा कटा कोट माना जा रहा है वह तो पक्षि-शरीर का अधोभाग है। सिन्धुकालीन देवताओं के शरीर पर कहीं भी कोटनुमा कपड़ा नहीं। पुरुषलिङ्ग देव या तो नग्न होते हैं या केवल लंगोटधारी। देवी-मूर्तियां छोटा सा घाघरा पहने दिखाई देती हैं। सिन्धुसंस्कृति के बहुत से देव अंशतः नररूप और अंशतः पक्षिरूप दिखाई देते हैं। मोहेंजोदड़ो की मुद्रा संख्या 347 पर अंकित संकीर्ण देवता का ऊपरी भाग मानुषी, नीचे का विहंगाकार और पीठ मुंडहीन बाघ की है।

अश्वत्थ सिन्धु संस्कृति निवासियों के परमोत्कृष्ट देवता का आयतन होने के कारण अति पवित्र पूज्य वृक्ष था। अथर्ववेद 19वें काण्ड के 39वें मन्त्र में अश्वत्थ को देवसदन कहा है ''अश्वत्थो देवसदनः'' ऋग्वेद 10.97.5 में भी तथा यजुर्वेद 12.7 में भी इसी प्रकार कहा है-

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।
गोभाज इव किलासथ यत् सनवथ पूरुषम्।।

---

1. मार्शल : मोहेंजोदड़ो एण्ड द इण्डस सिविलाइज़ेशन ग्रन्थ 1. पृष्ठ 64-65.

2. मैके : फर्दर एक्सकेवेशन्स ग्रन्थ 1. पृष्ठ 338 के. ना. शास्त्री कृत सिन्धु सभ्यता का आदि केन्द्र हड़प्पा से उद्धृत पृष्ठ 87.

अश्वत्थ में तुम्हारा बैठने का स्थान है और पत्ते पर तुम्हारा निवास है।

अथर्ववेद के तृतीय काण्ड द्वितीय अनुवाक का छठा सूक्त अश्वत्थ का ही वर्णन तथा स्तुति प्रस्तुत करता है। इस सूक्त के आठों मन्त्रों का देवता अश्वत्थ है। अश्वत्थ वृक्ष की शाखा से शत्रुओं को हटाने की बात आठवें मन्त्र में कही गई है। प्रैणान्वृक्षस्य शाखयाश्वत्थस्य नुदामहे।

अश्वत्थ से प्रार्थना की गई है कि वह वृत्र का नाश करने वाले इन्द्र, मित्र और वरुण से मित्रता करे तथा उन सब शत्रुओं का नाश करे जो प्रार्थक से द्वेष करते हैं तथा प्रार्थक जिन से द्वेष करता है-

पुमान् पुंसः परिजातोऽ श्वत्थः खदिरादधि।
स हन्तु शत्रून्मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम्।।
तानश्वत्थ निःशृणीहि शत्रून्वै बाधदोधतः।
इन्द्रेण वृत्रघ्ना मैत्री मित्रेण वरुणेन च।।

अश्वत्थ के बारे में कहा है कि यह खदिर आदि दूसरे वृक्षों में अपनी जड़ जमा कर प्ररोहण करता है। यज्ञाग्नि प्रदीप्त करते समय जिन दो अरणियों का प्रयोग किया जाता है उन में से ऊपर की अरणि अश्वत्थ की लकड़ी की होती है और नीचे की अरणि शमी की लकड़ी की होती है।

अश्वत्थ देवता को अंकित करने वाली मुद्रा (430 संख्यांक) के निचले भाग में सात मनुष्याकृतियों को सात मरुत् माना जा सकता है। ऋग्वेद के आठवें मण्डल के 96वें सूक्त में आठवें मन्त्र में 63 मरुतों का उल्लेख है। सायण इस मन्त्र पर भाष्य करते हुए लिखते हैं षष्टित्र्युत्तरसंख्याका मरुतः ते ये तैत्तिरीयके ईदृङ् चान्यादृङ् च इत्यादिना नवसु गणेषु सप्त सप्त प्रतिपादिताः। अर्थात् सात सात मरुत् नौ गणों में कुल मिला कर 63 होते हैं। अग्निपुराण में सात गणों में सात सात कर के 49 मरुतों की चर्चा की गई है शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सप्तसप्तका देवगणा मारुतेषु गणेषु सप्त कपालेषु अग्नौ पुराणे च एत एव प्रसिद्धाः। सात शिरोगत प्राणों से युक्त आत्मा को वेद में मरुत्वान् शिशु कहा है।

सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते

(ऋग्वेद 10.13.5. अथर्ववेद 7.57.2.)

मरुत् इन्द्र के सैनिक हैं अतः इन्द्र को भी मरुत्वान् कहा है। ऋग्वेद के तीसरे मण्डल के 47वें सूक्त में इन्द्र के सहायकों के रूप में मरुतों का वर्णन है जिन्होंने वृत्रहनन में तथा शम्बरवध में इन्द्र की सहायता की। प्रथम मण्डल के 114 वें सूक्त में रुद्र को मरुतों का पिता बताया गया है।

इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम्

(ऋ.1.114.6)

मुद्रा संख्यांक 387 से प्रतीत होता है कि अश्वत्थ और एकशृंग दोनों अश्वत्थ निवासी प्रधान देवता के प्रतीक थे। अश्वत्थ देवता का आयतन था और एकशृंग उस के आयतन का संरक्षक था। मुद्रा संख्यांक 387 पर उपरिभाग में अश्वत्थ वृक्ष है तथा निम्नभाग में दो एकशृंग हैं। मुद्रा संख्यांक 430 पर अंकित महिषमुण्ड का मुकुट अश्वत्थ निवासी महादेव के दोनों चित्रों का समन्वय है। मैके को चन्हुदड़ो से पक्की मिट्टी की मुद्रा छाप मिली थी। इस मुद्रा पर दो देवपुरोहित आमने सामने खड़े होकर एक हाथ से शृङ्गमय अश्वत्थ को थामे हुए हैं जबकि दूसरा हाथ कटि पर रखे हुए हैं।[1] मैके को न तो इस अभिप्राय का पता लगा और न ही उन्होंने पीपल की टहनियों के नीचे भैंसे के सींगों को पहचाना। यह ''सींग और पीपल'' का अभिप्राय महिषमुण्ड देवता के मुकुट से भी काफी साम्य रखता है। केदारनाथ शास्त्री का मत है कि अश्वत्थ निवासी देवता सिन्धुकालीन देवगण में सर्वोच्च देवता था और महिषमुण्ड देवता जिस का मुकुट अश्वत्थ और एकशृंग दोनों चित्रों का समन्वय है उस सर्वोच्च देव से निम्न कोटि का देवता था।[2] उन के विचार में सिन्धुसंस्कृति काल में अश्वत्थ देवता का वैसा ही स्थान रहा होगा जैसा कि वैदिक और पौराणिक काल में प्रजापति अथवा ब्रह्मा का था। श्री कृष्ण ने भगवद्गीता में अपनी विभूतियों के प्रसङ्ग में कहा है कि वृक्षों में मैं अश्वत्थ वृक्ष हूं ''अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्''[3] आज भी भारत में पीपल या अश्वत्थ वृक्ष को पूजनीय माना

1. मैके चन्हुदड़ो एक्सकेवेशन्स ग्र. 2. फलक 52 मुद्रा 36

2. केदारनाथ शास्त्री-सिन्धुसभ्यता का आदि केन्द्र हड़प्पा पृ०. 89

3. भगवद्गीता- वृक्षाणामश्वत्थोऽस्मि। 10.26

जाता है। कोई भी जानबूझ कर इस अश्वत्थ वृक्ष को नहीं काटता। हिन्दु इस वृक्ष को जल से सींचने में पुण्य मानते हैं, इस की परिक्रमा करते हैं तथा धागे से इस के तने को लपेटते हैं। इस पर सिन्दूर का लेप करते हैं। स्त्रियां पुत्र प्राप्ति के लिए इस वृक्ष का पूजन करती हैं। पीपल की शाखाओं से जलपात्र भी बांधा जाता है ताकि पितरों को तृप्त किया जा सके। किसी की मृत्यु होने पर उस का पुत्र या निकट सम्बन्धी कई दिनों तक इस वृक्ष पर जल चढ़ाते हैं। पीपल के वृक्ष के नीचे खड़े हो कर लोग असत्य नहीं बोलते। इस प्रकार भारतीय संस्कृति में अश्वत्थ या पीपल का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है और यह परम्परा सिन्धुसभ्यता काल से चली आ रही है। ब्रह्मतरु होने के कारण अश्वत्थ को ज्ञानतरु और सृष्टितरु भी माना जाता है और सिन्धु तट निवासी भी इसे ज्ञानतरु तथा सृष्टितरु मानते थे। उन का विश्वास था कि पीपल के शाखा-शिखण्ड (चोटी) को अपने सिर पर धारण करने से शिखण्डधारी व्यक्ति यथार्थ ज्ञान का अधिकारी बन जाता है परन्तु यह अधिकार देवताओं को ही प्राप्त था। प्राचीन सुमेरियन देवताओं के मुकुटों में वनवृषभ के सींगों के बीच देवद्रुम की मंगलमय शाखा दिखाई देती है। सम्भवत: देवद्रुम की शाखाशिखण्ड का यह अभिप्राय सुमेरियन लोगों ने सिन्धु सभ्यता के लोगों से लिया था। मेसोपोटोमिया में यह शाखाशिखण्ड कुछ समय के लिए प्रकट होता है फिर उत्तर काल में लुप्त हो जाता है सिन्धु सभ्यता में यह विशेषता इस के दीर्घ जीवन काल में निरन्तर दिखाई देती है। इस लिए लगता है कि यह कल्पना सर्वप्रथम भारत में उत्पन्न हुई।

पूर्णविकसित सिन्धुसंस्कृति सभ्यता जो हड़प्पा मोहेंजोदड़ो के अवशेषों में मिलती है, उस के विकास की विभिन्न अवस्थाओं के अवशेष बोलान दर्रे के मेहरगढ़, नौशारो, पेशावर के पास लेवन, कोट दिज़ी और हिसार के निकट कुनाल से प्राप्त हुए हैं। इन स्थानों की खुदाइयों के अवशेषों में लाल मिट्टी के पात्रों पर पीपल के पत्तों तथा सींग का अभिप्राय अंकित है जिस से यह प्रतीत होता है कि अश्वत्थपूजा अत्यन्त प्राचीन संस्कृति का अवशेष है। अलचिन बी तथा अलचिन आर ने 1977-1978 में लेवन की खुदाई में प्राप्त इस अभिप्राय के विषय में लिखा था। यह स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि यह स्थान प्रारम्भिक समय से विशाल सिन्धुसभ्यता का भाग था जिस में ये

प्रतीक विद्यमान थे जो बाद में पूर्णविकसित सिन्धुसभ्यता के सभी भागों में प्रचलित रहे। इस प्रकार सींग और पीपल के पत्तों का अभिप्राय लेवन में भी उन्हीं धार्मिक विश्वासों को सूचित करता है जो कोट दिजी में और बाद में मोहेंजोदड़ो में मिलते हैं।[1]

ooo

1. *एस०पी० गुप्ता : इण्डस सिविलाइज़ेशन पृ. 34 पर अलचिन बी अलचिन आर लिखित लेख। लेवन - ए स्टोन टूल फैक्टरी ऑफ फोर्थ टू थर्ड मिलेनियम बी.सी'' हड़प्पन सिविलाइज़ेशन पृष्ठ 521-554 से उद्धृत।*
एस खत्री तथा आचार्य द्वारा कुनाल (हिसार के निकट) से प्राप्त तथा बी०बी० लाल और बी०के० थापर द्वारा कालीबंगन (उत्तरी राजस्थान) से प्राप्त लाल मिट्टी के पात्रों पर भी यही अभिप्राय प्राप्त हुए हैं। एस०पी० गुप्ता वही पृष्ठ 64 तथा पृष्ठ 72.

बसोहली चित्रकला

लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व जम्मू के इस छोटे से पहाड़ी क्षेत्र में चित्रकारों की तूलिका रंगों से एक नया संसार रच रही थी। चित्रकार तो चले गये पर उन की कलाकृतियां आज भी भारत के ही नहीं विश्व के कलाविशारदों का मन मोह रही हैं।

कला कलाकार की हृदयगत भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम होती है जिसके द्वारा वह अपनी अनुभूतियों को दूसरों तक पहुँचाता है। संगीतज्ञ अपने स्वरों के उतार चढ़ाव से श्रोताओं के हृदयों को स्पन्दित कर उन्हें मुग्ध कर देता है। मूर्तिकार काष्ठ, धातु, पाषाण, मिट्टी आदि का सहारा ले कर दर्शकों के सम्मुख एक नूतन सृष्टि रच कर रख देता है। वास्तुकलाविशारद मृत्तिका, पाषाण आदि से नाना भव्य मन्दिर, भवन, विहार आदि बना कर उन के माध्यम से अपने दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति करता है। इसी प्रकार चित्रकार भी विभिन्न रेखाओं और वर्णों के समन्वय से अमूर्त भावनाओं को मूर्त रूप दे कर आत्माभिव्यक्ति में समर्थ होता है। संस्कृतसाहित्य में भी ऐसे अनेक प्रसंग मिलते हैं जहां चित्र को आत्माभिव्यक्ति के प्रमुख साधन के रूप में स्वीकारा गया है। कालिदास के मेघदूत का यक्ष पत्नी की याद में तड़प रहा है। अतीत को जीवित करने के प्रयास में वह अपनी रूठी हुई प्रिया का चित्र पर्वतशिला पर बनाता है और अपने को इस चित्रलिखित प्रिया के चरणों में गिरा कर उसे मनाना चाहता है। चित्र में उस की तन्मयता इतनी गहरी हो उठी है कि आँखें आंसू बरसाने लगती हैं और वह चित्र को देख भी नहीं पाता।

अभिज्ञानशाकुन्तल के छठे अंक में वियोगी दुष्यन्त ने भी अतीत की स्मृतियों को संजो कर तपोवन के वातावरण में प्रकृतिकन्या शकुन्तला को चित्रित किया है।

चिकने नये पत्तों से भरे आम के पेड़ के पास शकुन्तला थकी थकी सी खड़ी दिखाई दे रही है। बांह वृक्ष पर झुकी है। बालों का जूड़ा ढीला हो गया

है और उस में लगे फूल नीचे गिर रहे हैं। चेहरे पर पसीने की बूंदें चमक रही हैं। भंवरा मुख पर मंडरा रहा है जिसे वह लाल कमल के पत्ते सी लाल हथेली से हटा रही है। दोनों सखियां पास खड़ी हैं। चित्र देखते ही माढव्य की नज़र ऊंचे नीचे भागों में फिसलने सी लगती है और वह बोल उठता है- वाह मधुर चित्रण द्वारा कैसी बढ़िया भावाभिव्यक्ति हुई है। तन्मय हुआ दुष्यन्त स्वयं भूल जाता है कि यह चित्र है। भो: चित्रं खल्वेतत् बोल कर याद दिलाने वाले माढव्य को वह कहता है- अरे। मैं तो तन्मय हुआ साक्षात् प्रिया का दर्शन कर रहा था, तुम ने याद दिला कर प्रिया को चित्र बना दिया है। चित्र को भी देखूं कैसे! आसूं देखने कहां देते हैं ? इस अधूरे चित्र को पूरा करने के लिए दुष्यन्त की कल्पना देखें-

''अभी मुझे मालिनी नदी अंकित करनी है जिस के तट की रेत में हंसों की जोड़ी बैठी हो। नदी के दोनों ओर हिमालय की ढलानें बनानी हैं जहां हरिण आराम से बैठे हों और वहीं एक वृक्ष के नीचे जिस की टहनियों पर वल्कल वस्त्र टंगे हों, काले हरिण के सींग से अपनी बांयी आंख को खुजलाती हुई हरिणी को बनाना चाहता हूँ। यहां रमणीय प्रकृति और प्रेम का साक्षात् चित्र नेत्रों के सामने उभर आता है।

इस प्रकार के अनेक चित्रों का विवरण प्राचीन संस्कृत साहित्य में मिलता है जो सिद्ध करता है कि भारतीय चित्रकला की अक्षुण्ण परम्परा विभिन्न कालों में विभिन्न प्रदेशों में सुरक्षित रही है। बौद्धचित्रकला, जैनचित्रकला, अजन्ता एलोरा की गुप्तकालीन चित्रशैली, राजस्थान की राजपूतशैली, दक्षिणी शैली, मुग़लशैली, पहाड़ी शैली आदि कई शैलियों का विकास विभिन्न कालों में हुआ।

बसोह्ली 'जम्मू', पठानकोट, कांगड़ा, कुल्लू, चम्बा, मंडी आदि में पल्लवित हुई पहाड़ी शैली में बसोह्ली चित्रकला का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस शैली का विकास सत्रहवीं शताब्दी के आस पास हुआ। सब से प्राचीन चित्रावली गीतगोविन्द पर आधारित है। भागवत पुराण की एक चित्रावली मनकोट में बनी, दूसरी सुजानपुर में जो विभिन्न संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। रामायण चित्रावली भी बसोह्ली में बनी। भानुदत्त की रसमंजरी की तीन चित्रावलियाँ (1680) बनीं जिन में एक बॉस्टन संग्रहालय में सुरक्षित है, दूसरी डोगरा आर्ट गैलरी जम्मू में तथा भारतकला भवन वाराणसी में। तीसरी नूरपुर

में बनी थी जो कस्तूरभाई लालभाई संग्रहालय अहमदाबाद में सुरक्षित है।

बसोह्ली शैली के चित्रों का विषय क्षेत्र बड़ा विशाल है। धार्मिक और सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का अंकन इस शैली के चित्रों में मिलता है। 16वीं शती में उत्तर भारत में कृष्ण भक्ति की एक विशेष लहर चली थी जिस के दर्शन मीरा, सूर, केशव आदि की कृतियों में होते हैं। परमात्मा को प्रेमी कृष्ण के रूप में और समर्पित आत्मा को राधा या गोपियों के रूप में देखने का प्रयास हुआ। पर्वतों की तराइयों में बसने वाले किसानों, गद्दियों को गोपाल कृष्ण के रूप ने विशेष आकृष्ट किया और पहाड़ी चित्रकारों की तूलिका ने उस सारे वातावरण की सृष्टि कर दी जिस में कृष्ण का यौवन और शैशव बीता था। बसोह्ली चित्रकला का मुख्य विषय कृष्ण तथा सखियों की क्रीडाएं हैं। यहाँ वे नायक नायिका के रूप में चित्रित किए गये हैं। 1730 ईसवी में माणकू द्वारा चित्रित गीतगोविन्द में कृष्ण की प्रेम लीलाओं का अद्भुत अंकन है। पहाड़ी राजाओं के तथा राग रागनियों के चित्र भी इस शैली में मिले हैं। रामायण की चित्रावली भी बसोह्ली शैली में बनी।

बसोह्ली चित्रकला की प्रमुख विशेषता उस का सहज ग्रामीण सौन्दर्य है। पहाड़ी जीवन के भौतिक और आध्यात्मिक जीवन का अंकन बड़े स्वाभाविक ढंग से किया गया है। श्री नानालाल चमनलाल मेहता के शब्दों में इन चित्रकारों को जो कुछ कहना होता है वह सीधी सादी फड़कती हुई रेखाओं में, सादे फड़कते हुए रंगों में रंगीन आलेखन द्वारा सहज में ही कह देते हैं।" बसोह्ली चित्रकला पर मुग़ल शैली, काश्मीरी शैली तथा राजपूत शैली का प्रभाव भी दिखाई देता है पर इस की कुछ अपनी विशेषताएं हैं जो इसे अन्य शैलियों से अलग स्वतन्त्र सत्ता देती हैं।

1. कांगड़ा और गढ़वाल की शैलियों से विपरीत इस बसोह्ली शैली में नारी शरीर का अंकन पुरुषोचित ओज से भरा होता है।

2. पीछे की ओर धंसा हुआ ललाट, लम्बी झुकी हुई नाक, छोटा मुख, झुकी हुई ठोड़ी, भरे हुए कपोल, कपोलों पर लटके दो चार बाल और मद भरे कमल नयन इन चित्रों में मिलते हैं। मस्ती भरी श्याम रतनार आंखें पूर्ण चित्र का केन्द्रबिन्दु होती हैं जो चारों ओर घूमती

दर्शक की दृष्टि को बार बार अपनी ओर खींच लेती हैं।

3. पुरुषों के शरीर का ऊपरी भाग वस्त्ररहित होता है। नीचे धोती और बदन पर एक चादर दिखाई जाती है। स्त्री पुरुष दोनों पर अनेक अलंकरण दिखाई देते हैं।

4. चित्र का किनारा प्रायः पीले लाल या सिन्दूरी रंग में रंगा हुआ शृंगार की अभिव्यक्ति करता है।

5. पृष्ठ भूमि प्रायः समतल हल्की तूलिका से रंगी हुई हल्की हरी, लाल, चाकलेटी, या गहरी पीली होती है। आकाश और उस में निकला चांद भी कई चित्रों में दीखता है।

6. हाथों की विभिन्न मुद्राओं द्वारा भावों की सफल अभिव्यक्ति की गई है। डोगरा आर्ट गैलरी जम्मू में सुरक्षित इस शैली के चित्रों को देख कर इन के उत्कट तीव्र रंगों, शान्त वातावरण से पूरित भावभूमि तथा विभिन्न हस्त मुद्राओं से प्रकट होती मूक वाणी से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा जा सकता।

एक चित्र में दूध दोहते हुए कृष्ण बैठे हैं और पास बछड़े की रस्सी पकड़े राधा खड़ी हैं। नीचे हरी हरी दूब घास है जिस के बीचों बीच श्वेत पीले और हल्के पीले फूल खिले हैं। ऊपर नीला आकाश और क्षितिज है। पृष्ठभूमि में गहरा पीला रंग कड़ी धूप को सूचित कर रहा है। गाय मन्त्रमुग्ध हुई कृष्ण को निहार रही है। लगता है जैसे बछड़े को भी भूल गई है। बछड़े की दृष्टि मां के थनों पर है जिन तक पहुंचने की उस की उत्कण्ठा उस के उठे हुए पैर और उठी हुई पूंछ से सूचित हो रही है। कृष्ण की दृष्टि प्रेमिका पर टिकी है। सभी के नयनों में एक मस्ती, एक ललक है।

एक अन्य चित्र में अंकित है मुग्धा नायिका जिसे पता ही नहीं चला कि कब उस के द्वार यौवन आ पहुँचा। अभी-अभी नहा कर निकली है पर फिर भी थकी थकी है। पैरों की अस्थिरता, जघन का भारीपन, आंखों की मस्ती सब उस के हृदय की उथल पुथल को प्रकट कर रहे हैं। उसे रोमांच हो आया है जिसे वह शैवाल अंकुर समझ कर हाथों से हटा रही है और सखी से पूछती

है कि यह सब क्या हो रहा है ? सुनहरी छाप से युक्त श्वेत साड़ी की हलचल हवा के हल्के से झोंके को बता रही है। पास ही कुछ बन्द कलियां और कुछ खिले फूल हैं जो क्रमशः नायिका के शैशव और यौवन के प्रतीक हैं।

दो भागों में बंटा लाल बार्डर युक्त एक चित्र अभिसारिका का है। बाएं भाग में लताकुंज में प्रेमी कृष्ण प्रतीक्षा कर रहे हैं। दाएं भाग में वर्षा में भीगती प्रेयसी उत्कण्ठा युक्त हुई तेजी से बढ़ रही है। सखी पूछ रही है, कहां चली हो इस अन्धेरी रात में ? मुड़ कर उत्तर देती है, पर कदम आगे ही बढ़ रहे हैं। एक पैर भूमि से उठा है, दूसरा उठने की स्थिति में है। नायिका के मुक्ताहार तथा वस्त्रों की हलचल की तुलना सखी के स्थिर वस्त्रों से करें तो दोनों की मनःस्थितियों का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। गति में तीव्रता लाने को घाघरे का एक कोना नायिका ने हाथ में पकड़ रखा है जिस से चित्रकार एक ओर तो उस की मानसिक उत्सुकता की और दूसरी ओर उस के मांसल सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में समर्थ हुआ है।

आधा खुला गृहद्वार सूचित करता है कि नायिका चुपके से छिप कर निकली है। उद्दीपन विभाव के रूप में आकाश में घिरे मेघों की हलचल भी दर्शनीय है। विद्युत् और मेघों की क्रीड़ा विप्रलम्भ शृंगार के वातावरण को तीव्रतर कर रही है।

एक अन्य चित्र में कृष्ण राधा को आकाश में घिरे मेघ दिखा रहे हैं। मेघों में बिजली कौंध रही है। मयूर केका ध्वनि कर रहा है, पपीहा भी बोलने लगा है। आम का पेड़ आमों से लद गया है नीचे संगीत ध्वनि हो रही है। चित्र प्रेम के वातावरण से पूरित चित्रकार के कौशल का परिचय देता हुआ दर्शकों को भी रसविभोर कर देता है।

इस शैली के कुछ चित्रों को जम्मू कश्मीर राज्य की कला संस्कृति और भाषा अकादमी ने प्रकाशित कर कलाप्रेमियों के नयनों को तृप्त करने का प्रयास किया है। इस दिशा में अभी बहुत आगे बढ़ने की आवश्यकता है। विष्णु-धर्मोत्तरपुराण के संदर्भ में इन कलाकृतियों का मूल्यांकन होना चाहिए।

ooo

ध्वनिविज्ञान का महत्त्व

भाषा मानव समाज की बहुमूल्य सम्पत्ति है जो उस की सभी सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का मुख्य आधार बनती है। भावों की अभिव्यक्ति के लिए और कई प्रकार के संकेत जैसे अंगों के इशारे, पताकाएं, चित्र आदि भी काम आते हैं। गाड़ी चलाने के लिए हरी झण्डी, रोकने के लिए लाल झण्डी, युद्ध-विराम के लिए सफेद झण्डी का प्रयोग प्रसिद्ध है पर इन्हें भाषा नहीं कहा जाता। युद्ध का बिगुल बजना, मन्दिर की घण्टियों की आवाज़, वाहन के भोंपू की ध्वनि ये सब कुछ न कुछ प्रकट करते हैं जो हम समझ लेते हैं पर ये भी भाषा नहीं कहे जाते। भाषा तो मनुष्य के वाग्यन्त्रों से निकली सार्थक ध्वनियों की यादृच्छिक (इच्छानुसार) व्यवस्था है जिस के द्वारा कोई मानव समुदाय परस्पर भावों को प्रकट करता तथा समझता है।

मनुष्य जिस समुदाय में जन्म लेता है तथा पालित पोषित होता है उस समुदाय की भाषा की ध्वनियों को तथा भाषा की शब्दसंरचना तथा वाक्यसंरचना को वह अपने बचपन के प्रथम पांच छः वर्षों में ही सीख लेता है जिस का प्रयोग वह प्रायः जीवन भर करता है। चूंकि बच्चों के द्वारा सीखी जाने वाली इस भाषाशिक्षा में मां का योगदान बहुत होता है इसलिए वह बच्चे की मातृभाषा कही जाती है। मां तथा आस पास अन्य लोगों की बातें सुन कर बच्चा उन की नकल करता है। बार-बार के अभ्यास और गलतियां सुधारने की यह प्रक्रिया पांच छः साल तक चलती है जब तक उसका अनुकरण पूर्ण नहीं होता।

अनुकरण की पूर्णता ही उस के भाषाज्ञान का माप होती है। मातृभाषा बोलते बोलते उसे उस भाषा की ध्वनियों के उच्चारण की आदत हो जाती है। जब वह बड़ा होकर कोई दूसरी भाषा सीखने लगता है तो वह बनी हुए आदत उस के लिए बाधा उपस्थित करने लगती है। अपनी मातृभाषा की ध्वनियों से भिन्न ध्वनियों के बारे में वह यह सोचने लगता है कि वे मेरे द्वारा अनुच्चरणीय

हैं जब कि वस्तुतः कोई भी मानवीय भाषाध्वनि अनुच्चरणीय नहीं होती। डोगरी–भाषी को कश्मीरी भाषा की ध्वनियां शुरु शुरु में अजनवी प्रतीत हो सकती हैं।

पर जिस अभ्यास और त्रुटिसुधारण की प्रक्रिया से उस ने डोगरी ध्वनियों का उच्चारण सीखा था उसी लम्बी प्रक्रिया से गुजर कर वह उन ध्वनियों को भी सीख सकता है। इस लम्बी प्रक्रिया से बचने के लिए और दूसरी भाषा का शुद्ध उच्चारण सीखने के लिए ध्वनिविज्ञान बहुत उपयोगी होता है। ध्वनिविज्ञान से अनभिज्ञ व्यक्ति अपनी मातृभाषा से अलग किसी भी भाषा के उच्चारण में ऐसी ऐसी भूलें कर देता है जो उस के लिए मुसीबत खड़ी कर देती हैं या उसे हास्यास्पद बना देती हैं। उर्दू भाषा में एक शब्द जलील है जिस का अर्थ है तेजस्वी, उत्तम तेज या जलाल से युक्त। पर यदि कोई इस का उच्चारण ज़लील कर दे तो अर्थ होगा अत्यन्त नीच। हिन्दी में ज और ज़ ध्वनियां अलग अलग ध्वनिम नहीं है। जहाज कहें या जहाज़ कोई अन्तर नहीं पड़ता पर जब किसी आदरयोग्य व्यक्ति को जलील कहने के स्थान पर ज़लील कह देंगे तो तूफान खड़ा हो जाएगा। जब कोई डोगरीभाषी उत्तर प्रदेश से आए व्यक्ति को यहां बैठिए के स्थान पर जहां बैठिए कह देता है तो सुनने वाला बैठने का स्थान खोजने लगता है कि कहां बैठूं ? जब वह झाड़ू के लिए ब्हारी कहेगा तो सुनने वाले को उस का अर्थ भारी (वज़नदार) प्रतीत होगा झाड़ू या बुहारी नहीं? किसी अंग्रेज़ी मातृभाषी के सामने जब हम फेल का उलट पास कहते हैं तो उसे बास सुनाई देता है क्यों कि उसकी मातृभाषा में क प त आदि ध्वनियां शब्दों के शुरु में ख फ थ जैसी बोली जाती हैं और ग ब द शुरु में क प त जैसी।

इस से यह स्पष्ट है कि अपनी मातृभाषा से भिन्न कोई भी भाषा जल्दी सीखने तथा उस का ठीक ठीक उच्चारण सीखने को ध्वनिविज्ञान का सहारा लेना बहुत आवश्यक होता है। इसी प्रकार दूसरे भाषाभाषियों को अपनी भाषा सिखानी हो तो भी ध्वनिविज्ञान की शरण लेना आवश्यक है।

आज भूमण्डलीकरण के युग में जब सारा विश्व टैलीफोन, रेडियो, टैलीविज़न आदि संचार माध्यमों से जुड़ गया है और यातायात के साधनों ने

स्थान और समय की दूरियां बहुत कम कर दी हैं तो केवल एक मातृभाषा ही जानने से काम नहीं चल सकता। इन्टरनैट से जुड़ी इस दुनिया में गुड़गांवा के काल सैन्टर में हरियाणवी या पंजाबी या डोगरी मातृभाषा बोलने वाला सौफ्टवेयर या हार्डवेयर इंजीनियर कभी फ्रांसवाले से बात करता है, कभी जर्मन-भाषी से, कभी इटैलियन से तो कभी डेनमार्क के डेनिशभाषी से। आज शिक्षा, व्यापार, उद्योग किसी भी क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए अपनी मातृभाषा से भिन्न दो चार भाषाओं का जानना जरूरी हो गया है। हमारा भारत राष्ट्र भी बहुभाषी देश है जहां अनेक भाषाएं बोली जाती हैं। हमारी शिक्षाप्रणाली में त्रिभाषा फार्मूले के अनुसार हर विद्यार्थी को कम से कम तीन भाषाएं तो सीखनी ही हैं अधिक चाहे जितनी सीख ले। यह भाषा प्रशिक्षण सुचारु रूप से तो तभी संभव हो सकता है यदि भाषा विज्ञान में विशेषत: ध्वनिविज्ञान में अध्यापक अच्छी तरह प्रशिक्षित हो।

विदेशों में विश्वविद्यालय स्तर पर भाषा का अध्ययन करने वाले हर विद्यार्थी के लिए ध्वनिविज्ञान का अध्ययन आवश्यक होता है। प्राचीन भारत में जब गुरुशिष्यपरम्परा से वेदों का अध्ययन होता था तब वेदमन्त्रों के शुद्ध उच्चारण को सिखाने को प्रातिशाख्यों और शिक्षाग्रन्थों की रचना हुई जो ध्वनिविज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व ग्रन्थ माने गये हैं। प्रातिशाख्यों और शिक्षा ग्रन्थों के अतिरिक्त संस्कृत के व्याकरण ग्रन्थों में भी ध्वनिविज्ञान से सम्बन्धित सामग्री मिलती है। अमेरिका के प्रसिद्ध भाषा शास्त्री ब्लूमफील्ड का पाणिनिकृत संस्कृत व्याकरण के बारे में यह कथन है-

"अपनी मातृभाषा का जो सम्पूर्ण विवरण पाणिनि के द्वारा प्रस्तुत किया गया वैसा विवरण किसी भी प्राचीन भाषा का नहीं मिलता। और न ही इस बात की संभावना ही है कि आधुनिक काल की किसी भी भाषा का विवरण इतनी पूर्णता के साथ लिखा जा सकेगा।" पाश्चात्य जगत् का आधुनिक ध्वनिविज्ञान प्राचीन भारतीय ध्वनिशास्त्रियों से कितना प्रभावित है इस का प्रमाण प्रो. फर्थ का यह कथन है-"भारतीय वैयाकरणों और ध्वनिशास्त्रियों के बिना 19 वीं शती के ध्वनिशास्त्रियों की कल्पना करना ही कठिन है।"

ध्वनिविज्ञान हमें बताता है कि हम ध्वनियां कैसे निकालते हैं। अलग-

अलग ध्वनियों के उच्चारण में हमारे शरीर के उच्चारण अवयव कैसी क्रिया करते हैं ? जिह्वा, ओठ, तालु, कण्ठ, नासिका, स्वरतन्त्रियां किस प्रकार प्रयुक्त होती हैं ?

हम सब जानते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय ध्वनिवर्णमाला (International phonetic script) का मूल आधार वही है जो पाणिनि शिक्षा में उपलब्ध है। इतनी बहुमूल्य ज्ञानसम्पदा के स्वामी होते हुए भी यदि हम ध्वनिविज्ञान से नहीं जुड़ते तो हमारा दौर्भाग्य है। इस बात की परम आवश्यकता है कि हमारे सभी विश्वविद्यालयों में ध्वनिविज्ञान का विभाग स्थापित हो जिस में एक सामान्य पाठ्यक्रम सभी भाषा विभागों के विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य हो ताकि वे उस भाषा की ध्वनि सम्बन्धी विशेषताओं को बहुत कम समय में सीखने की क्षमता प्राप्त कर सकें।

ooo

डोगरी कविता में ध्वन्यात्मक शब्दचित्र

किसी भी भाषा में अनुरणनात्मक शब्दों का प्रयोग उस भाषा की सहज सरलता और भावों को अभिव्यक्त करने की अनुपम क्षमता को प्रकट करता है। शब्द अर्थों के वाहक होते हैं पर भाषाविज्ञान के अनुसार शब्दों का अर्थों के साथ सम्बन्ध यादृच्छिक होता है। किसी पशु विशेष को घोड़ा कहा जाए या अश्व यह उन शब्दों का प्रयोग करने वाले समाज की इच्छा पर ही निर्भर होता है। अश्व, घोड़ा आदि शब्दों की ध्वनियों का उस पशु की आकृति तथा क्रियाकलाप के साथ कोई नियत सम्बन्ध नहीं है परन्तु अनुरणनात्मक शब्दों की ध्वनियां ही उन शब्दों के अर्थ को यत्किंचित् प्रकट करने में समर्थ होती हैं। ऐसे शब्द ही वस्तुतः ध्वनिप्रतीक या ध्वन्यात्मक शब्दचित्र कहे जा सकते हैं। इन शब्दों के भाव को समझने में श्रोता को अधिक प्रयास नही करना पड़ता। ये शब्द श्रवणमात्र से स्वतः श्रोता के हृदय को छूकर वहां निज अर्थ को अंकित कर देते हैं।

शब्द ध्वनियों से बनते हैं और ध्वनियां श्रव्यता की दृष्टि से विभिन्न प्रकार की होती हैं। कुछ ध्वनियां सुनने में कोमल होती हैं, कुछ कठोर, कुछ ध्वनियां कानों को भारी भारी लगती हैं, कुछ हल्की फुलकी। कुछ तीव्र होती हैं, कुछ मन्द। यदि कोमल अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए कोमल ध्वनियों से बने शब्द का प्रयोग किया जाता है तो उस शब्द की अभिव्यञ्जना शक्ति दुगुनी हो जाती है। इसी प्रकार कठोर भाव की अभिव्यक्ति के लिए कठोर ध्वनियों से निर्मित शब्द का प्रयोग उस भाव को श्रोता तक पहुंचाने में विशेष सहायक होता है। संस्कृत के प्राचीन साहित्यशास्त्रियों ने इस क्षेत्र में अनुसन्धान कर के माधुर्य, ओज, प्रसाद इन तीन गुणों की कल्पना की है। दण्डी ने इन गुणों की संख्या दस बताई है, वामन ने बीस तथा भोज ने बहत्तर गुणों का वर्णन किया है। गुणों में प्रधानतम प्रसाद गुण की व्याख्या करते हुए मम्मट ने कहा है-

श्रुतिमात्रेण शब्दात्तु येनार्थप्रत्ययो भवेत्।
साधारण: समग्राणां स प्रसादो गुणो मत:।।
काव्यप्रकाश 8, 76

जिस के सुनने मात्र से शब्द के अर्थ की प्रतीति हो जाए, सभी रसों में रहने वाला ऐसा गुण प्रसाद गुण कहलाता है।

माधुर्य गुण के व्यञ्जक ये वर्ण बताए गये हैं-देवनागरी वर्णमाला के टवर्ग को छोड़ कर शेष स्पर्श व्यञ्जन जो अपने वर्ग के अन्त्य वर्ण ङ ञ न म से मिले हों तथा ह्रस्व स्वर, रेफ तथा णकार।

ओज गुण को प्रकट करने वाले वर्ण हैं-वर्गों के दूसरे वर्णों ख छ ठ थ फ से युक्त हुए वर्गों के प्रथम वर्ण क्रमश: क च ट त प तथा वर्गों के चतुर्थ वर्णों घ झ ढ ध भ से युक्त हुए वर्गों के तृतीय वर्ण ग ज ड द ब, टवर्ग तथा श ष वर्ण।

अनुरणनात्मक शब्दों में एक ओर तो समुचित ध्वनियों के प्रयोग से भाव की कोमलता, कठोरता आदि की अभिव्यक्ति होती है, दूसरी ओर उन ध्वनियों की द्विरुक्ति आदि से अनुभूतियों की तीव्रता, निरन्तरता, गहराई आदि को प्रकट किया जाता है। संस्कृत भाषा में भी निरन्तरता की अभिव्यक्ति द्विरुक्ति द्वारा की जाती है। पठ् धातु से बने यङन्त रूप पापठ्यते का अर्थ है बार बार पढ़ता है, तथा रुद् धातु से बने रूप रोरुद्यते का अर्थ है निरन्तर रोता जाता है। शिशु की सहज सरलता सी यह अकृत्रिमता जनभाषाओं की बहुमूल्य सम्पत्ति है। नदी के पानी के बहने की ध्वनि को हिन्दी में कल कल से तथा तमिल में चल चल से प्रकट किया जाता है। दरवाज़े की आवाज़ को हिन्दी में खट् खट् तमिल में कट् कट् कहते हैं। घण्टी बजने की ध्वनि हिन्दी में टन टन से, तमिल में डन डन से अभिव्यक्त होती है। ढोल बजने की अभिव्यक्ति हिन्दी तमिल पंजाबी डोगरी सभी में डम डम द्वारा होती है। डोगरी भाषा में भी ऐसे अनुरणनात्मक शब्दों तथा ध्वन्यात्मक शब्दचित्रों का प्रयोग प्रचुरता से मिलता है। डोगरी भाषा के शब्दों में द्विरुक्ति कई प्रकार के अर्थों की द्योतक है। में जागते गी पुच्छेआ ते **फट** बोलन लगी पेआ में **फट** द्वारा वक्ता की उक्ति पूरी होने से भी पूर्व श्रोता का बोल पड़ना प्रकट होता है। **फट्टक** शब्द से यह भाव

और तीव्रता की अभिव्यक्ति करता है। इक गल्ल पुच्छी ते **फट फट** बोलदा गेआ' में **फट फट** बोलने की निरन्तरता को प्रकट करता है। 'गल्ल पुच्छो ते **फटाफट** जवाब दिन्दा ऐ' में **फटाफट** के प्रयोग से क्रिया की तीव्रता प्रकट होती है। सामान्य बोलचाल की डोगरी में तो ये अनुरणात्मक शब्द मिलते ही हैं, डोगरी कविता में भी इनका प्रयोग काव्य की सहज स्वाभाविकता तथा प्रभावोत्पादकता को बढ़ाने में पर्याप्त सहायक होता है। कहीं द्विरुक्ति मात्र से, कहीं विशेष भाव की प्रतिध्वनि करती हुई ध्वनियों के प्रयोग से तो कहीं विशेष ध्वनिक्रम के प्रयोग से इन ध्वन्यात्मक शब्दचित्रों का सृजन होता है। कुछ ध्वनियां गति को प्रकट करती हैं, कुछ स्थिरता को, कुछ प्रकाश की प्रतीति कराती हैं, कुछ कोमलता की द्योतक होती हैं और कुछ कठोरता की।

गतिद्योतक ध्वन्यात्मक शब्दचित्र

डोगरी कविता में पहाड़ी झरनों के बहाव के लिए **झर झर** या **छर छर** का प्रयोग मिलता है-

ऊआं झरने झर झर झरदे
इक बूंदै गी तरसै पंछी पृ. 64
नाड़ू छर छर करदे चलदे
वही पृ. 49.
छर छरान्दे नाड़ू जे बगदे
वही. पृ. 79

नदी के बहाव के लिए झर झर का प्रयोग नहीं मिलता छर छर का मिलता है

छर छर छर छर सरवरी बगदी
कूंज कतारां पृ. 111

वायु की गति को **फर फर** से प्रकट किया गया है

फर फर बा फरनाटड़े मारदी
इक बूंदै गी तरसै पंछी पृ.40
फर फर झुल्लदी बा पुरै दी
वही पृ. 88

भंवरे की उड़ान भी फर फर से व्यक्त की गई है–

फर फर करदा उड्डुरी जन्दा
फर फर भौन्दा झौन्दा
वही पृ. 46

कोह्लू की गति को **चुर मुर चुर मुर** से प्रकट किया गया है

चुर मुर चुर मुर कोह्लू चलदा
मधुकण पृ. 22

मनुष्य की सामान्य गति के लिए डोगरी में टुर क्रिया का प्रयोग होता है। इस क्रिया की द्विरुक्ति गति की निरन्तरता को प्रकट करती है

टुरी टुरी पैरें छाले पेई गे
इक बूंदै गी तरसै पंछी पृ. 76

गति की निरन्तरता और निरर्थकता की सांझी अभिव्यक्ति **लूर लूर** से हुई है

फिर सारे लूर लूर ओ सपाइया
वही पृ. 76

जिन्दड़ी भर फिरदे रेह् अस लूर लूर
अस ते आं बनजारे

शरीर के कम्पन की अभिव्यक्ति प्राय: **थर थर** से होती है

कम्बे थर थर मेरी काया
इक बूंदे गी तरसै पंछी पृ. 70

थर थर कम्बदी काया
डोला कुन्न ठप्पेया पृ. 21

परन्तु सरदी से होने वाला कम्पन जिस में मनुष्य कांपता तो है ही पर साथ साथ शरीर को सिकोड़ता भी जाता है **ठुर ठुर** से प्रकट किया जाता है

ठुर ठुर करदा ठरै बढेपा

वही. पृ. 20

यहां ठ ध्वनि के साथ संवृत्त वृत्ताकार उ का प्रयोग, जिस में ओंठ भी संकुचित होते हैं, बड़ा जचता है।

दीपक की बाती का हिलना **थरक फरक** से बताया गया है–थरकदी फरकदी जोत बलदी रेई

कूंज कतारां पृ. 127

इन सब गति द्योतक शब्दों में 'र' ध्वनि की प्रधानता है। 'र' कम्पनयुक्त ध्वनि है जिस में जिह्वा कांपती है। अतः इस ध्वनि से युक्त शब्दों का गति के लिए प्रयोग सहज स्वाभाविक लगता है। संस्कृत भाषा में भी गतिद्योतक शब्दों में प्रायः र का प्रयोग है जैसे चरति सरति तरति क्रामति भ्रमति आदि में।

ध्वनिद्योतक ध्वन्यात्मक शब्दचित्र

किसी वस्तु अथवा जीव में उत्पन्न ध्वनि के अनुकरण पर बने शब्द इस वर्ग में आते हैं तथा उन का भाव तुरन्त स्पष्ट होता है। भंवरा **भूं-भूं** करता है, पपीहा **पी पी** कहता है। कुछ अन्य पक्षी **चूं चूं चिड़ चिड़** करते हैं। काली कोयल **कूह् कूह्** करती है।

भूं भूं करदा गुन गुन गान्दा
इक बूंदै गी तरसै पंछी पृ. 46

पी पी करै पपीहा
चूं चूं चिड़ चिड़ करदे रौंहदे
डोला कुन्न ठप्पेया पृ.13

कालिये कोयलिये कूह् कूह् करियै निं बोल
डुग्गर धरती पृ. 3

जल प्रवाह की ध्वनि यदि मधुर और कोमल है तो उसे **कलकल** या **छै छै** से प्रकट किया जाता है पर यदि वह ध्वनि कठोर और जोश भरी है तो सां सां का प्रयोग मिलता है।

कल कल करदे छै छै बगदे
डोला कुन्न उप्पेया. पृ. 88

सां सां करदा झग्गां छोड़ी
कोल बगा दा नाला। वही. पृ 16

आंधी की कठोर ध्वनि भी सां सां से अभिव्यक्त हुई है।

सां सां करदा झक्खड़ झुल्लै
मेरी कविता मेरे गीत पृ. 92

बादल की गरज **घनन घनन** से तथा मन्द मन्द बरसते बादल की ध्वनि **रिमझिम** से व्यक्त की जाती है।

गरजन तरजन घनन घनन घन
इक बूंदै गी तरसै पंछी पृ. 84

रिमझिम रिमझिम बद्दल बरदा
वही पृ. 75

नयनों से बहता अश्रुजल **छम छम** ध्वनि करता है।

छम छम रौन्दे नैन गौरी दे
वही. पृ. 75

बिजली की ध्वनि कड़ कड़ से व्यक्त की गई है।

कड़ कड़ बिजली ऊआं कड़कै
वही पृ. 64

द्वार की सांकल तथा पीतल के बरतन आदि से उत्पन्न ध्वनि **खड़कना** से, छैनों से उत्पन्न ध्वनि **छनकना** से, तथा घड़यालों, कंगरेलों की ध्वनि ठनकना से प्रकट की गई है-

छैने छनकाए दे जां घड़याल ठनकाए दे
सुरग निं जान हुन्दा पित्तल खड़काए दे
वही पृ. 26

जजरी जजरी टोरा टुरदा गल ठनकै कंगरेल
मधुकण पृ. 22

जलती लकड़ी या अङ्गारे की ध्वनि **तिड़कना** है।

भड़कै मके, फी तिड़कियै ङारे बने सुआह
गमले दे कैकटस पृ. 30

दाँतों के परस्पर बजने को **किट किट** से व्यक्त किया है।

किट किट करियै दन्द करीचन। डोला कुन्न ठप्पेया पृ. 17

इन शब्दों में प्राय: अनुनासिक वर्णों 'म न ङ ञ ण' तथा अनुस्वार का प्रयोग किया जाता है।

दृश्यद्योतक ध्वन्यात्मक शब्दचित्र

इस प्रकार के शब्द प्रकाश चमक आदि की अनुभूति कराते हैं। इन में ल ध्वनि की प्रधानता है संस्कृत के आलोक, ज्वाला, लालित्य, लावण्य शब्द भी ल ध्वनि का सम्बन्ध प्रकाश के साथ प्रकट करते हैं।

डोगरी भाषा में कम्पन युक्त प्रकाश को **झिलमिल** शब्दचित्र प्रकट करता है जैसे चन्द्र की चांदनी के विषय में कवि कहता है

कदें ते झिलमिल चिटक चान्दनी
इक बूंदै गी तरसै पंछी पृ. 64

निरन्तर जलने वाला सशक्त प्रकाश **लट् लट्** से व्यक्त होता है। यह भीतर आत्मा का प्रकाश है जो नयनों से अभिव्यक्त होता है।

आसा जोत जगे मन अन्दर लट लट रूप सजाई।
जोत पृ. 69

लट लट करदे डेले बलदे।
डोला कुन्न ठप्पेया पृ. 16

लपटों वाला प्रकाश **लप लप** से प्रकट होता है।

बेशक बलन चियालीं लप लप

जोत पृ० 45

तारों की चमक इस प्रकार वर्णित है-

लिश्कन लुश्कन चमकन चुमकन

इक बूंदै गी तरसै पंछी पृ. 95

जो दीप बुझने को है उस का जलना लट लट से नहीं **टिम टिम** से व्यक्त होता है।

टिम टिम दीये बलदे।

जोत पृ. 69

इन थोड़े से शब्दों का अध्ययन डोगरी भाषा की अर्थाभिव्यक्ति की सहज शक्ति की ओर संकेत मात्र करता है। भाषा विज्ञान और शैली विज्ञान की दृष्टि से इस दिशा में आगे और शोध कार्य कर के विभिन्न भाव स्थितियों में प्रयुक्त हुई डोगरी भाषा की शैली के मानदण्डों का निर्धारण किया जा सकेगा ऐसी सम्भावना है।

ooo

हिन्दी की वैज्ञानिक तकनीकी शब्दावली के प्रसार की आवश्यकता

किसी भी विद्या के क्षेत्र का विशेष ज्ञान आज विज्ञान की श्रेणी में आता है जैसे आयुर्विज्ञान (Medical Science), वनस्पति विज्ञान एवं जीवविज्ञान (Biosciences), रसायनविज्ञान (Chemistry) भौतिकविज्ञान या भौतिकी (Physics) आदि। राजनीति, समाज, भाषा, गृहकौशल आदि विषयों का विशेष अध्ययन भी राजनीति विज्ञान (Political Science) सामाजिकविज्ञान (Social Science) भाषाविज्ञान (Linguistics) गृहविज्ञान (Home Science) आदि सभी विज्ञान के अन्तर्गत माने जाते हैं।

प्राय: सभी देशों में विज्ञान की शिक्षा का माध्यम उस देश के लोगों की मातृभाषा या राष्ट्रभाषा ही होती है। प्राचीन काल में भारत में भी विज्ञान की पर्याप्त उन्नति हुई थी और विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान प्रमुखत: संस्कृत माध्यम से दिया जाता था। प्राचीन वैदिक साहित्य में कृषि, गणित, वस्त्र उद्योग, आयुर्वेद से सम्बद्ध वैज्ञानिक शब्दावली मिलती है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कृषि, उद्योग, वास्तुशास्त्र, आयुध, धातुकर्म, रसायन, तोल माप, राजनीति शास्त्र इन सब क्षेत्रों से सम्बद्ध शब्दावली उपलब्ध है। पराधीनता के युग में हमारी यह बहुमूल्य सांझी विरासत भी लुप्त प्राय: हो गई। ब्रिटिश शासन में भारतीयों के लिए शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी निर्धारित हुआ जो स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी बहुत से प्रदेशों में यथावत् चल रहा है। विज्ञान के क्षेत्रों में तो उच्च शिक्षा का माध्यम सभी विश्वविद्यालयों में अंग्रेज़ी ही है। मानव संसाधन विकास मन्त्रालय के अन्तर्गत वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना 1961 में एक केन्द्रिय संस्थान के रूप में हुई थी। जम्मू कश्मीर के सुप्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् भाषाविद् डा. सिद्धेश्वर वर्मा भी काफी समय तक उसके निदेशक रहे। वैज्ञानिक तकनीकी शब्दावली निर्माण के लिए सिद्धान्त भी विद्वानों की सहमति

से बनाये गये। अब तक 6 लाख से अधिक वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दों के हिन्दी पर्याय निर्धारित किये जा चुके हैं। सन् 1973 में आयोग ने विज्ञान के क्षेत्र में ''बृहत् पारिभाषिक शब्द संग्रह'' को प्रकाशित किया था जिस का कम्प्यूटरीकृत संशोधित संस्करण 1994 में प्रकाशित हुआ जिस में भौतिकी, गणित, रसायन, प्राणिविज्ञान, भूगोल, वनस्पतिविज्ञान, भूविज्ञान और गृहविज्ञान जैसे विषयों से संबन्धित एक लाख तीस हज़ार पारिभाषिक शब्द संगृहीत हैं।

इस प्रकार के पारिभाषिक शब्दकोशों के निर्माण का प्रमुख उद्देश्य सभी भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त होने वाले पारिभाषिक शब्दों में यथासंभव अधिक से अधिक एकरूपता लाना है। इसलिए यह सिद्धान्त स्वीकार किया गया कि उन शब्दों का चयन किया जाये जो अधिक से अधिक प्रादेशिक भाषाओं में प्रयुक्त होते हों। अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को यथासंभव उनके प्रचलित अंग्रेज़ी रूप में अपना कर हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुसार उनका लिप्यंतरण कर लिया जाए जैसे हाइड्रोज़न, रेडियो, रेडार, इलेक्ट्रान आदि।

यह भी निर्णय हुआ चूंकि बहुत सी भारतीय भाषाओं का मूल आधार संस्कृत है और चूंकि संस्कृत में शब्दनिर्माण की अपार क्षमता है अतः नये शब्दों के निर्माण में संकल्पना को प्रकट करने के लिए संस्कृत धातुओं, उपसर्गों, परसर्गों की सहायता ली जानी चाहिए।

संस्कृत की एक धातु युज् है जिस का अर्थ जुड़ना तथा प्रयोग करना है। इस धातु से बने कम से कम चार सौ शब्द हिन्दी में आज भी चलते हैं। इसी प्रकार के शब्द दूसरी भारतीय भाषाओं में भी मिलते हैं। युज् से ही संज्ञा शब्द बनते हैं योग, उद्योग, प्रयोग, संयोग, वियोग, प्रतियोग आदि। योगी उद्योगी, संयोगी वियोगी प्रतियोगी आदि विशेषण हैं, योज्य योजनीय प्रयोजनीय भी विशेषण हैं, युक्त अयुक्त प्रयुक्त नियुक्त उद्युक्त आदि भूत कृदन्त हैं। यह सारी हमारी सांझी विरासत है। एक हृ धातु हर लेना अर्थवाली है जिससे निष्पन्न हार के साथ उपसर्ग प्र जोड़ें तो प्रहार का अर्थ ठोकना पीटना है, सं जोड़े तो संहार का अर्थ मारना नाश करना है, परि लगाएं तो परिहार का अर्थ शंका दूर करना है, आ उपसर्ग लगाएं तो आहार का अर्थ है भोजन, वि उपसर्ग लगाएं तो अर्थ है आवास (जैसे अशोक विहार, मयूरविहार), उप उपसर्ग लगाएं तो अर्थ है भेंट, उपहार। संस्कृत की यह शब्दसाधन की शक्ति भारतीय भाषाओं

की पैतृक सम्पत्ति है जिस पर उनका पूरा अधिकार है। अतः संस्कृत पर आधारित शब्दावली प्रादेशिक भाषाओं के मध्य सेतु का काम करती है।

आज के युग में नित नई वैज्ञानिक उपलब्धियां समक्ष आ रही हैं। उन्हें जन साधारण तक पहुंचाने की योजना तभी सफल हो सकती है जब उनकी सूचना जनभाषा के माध्यम से लोगों तक पहुंचे। भारत के कृषि वैज्ञानिकों द्वारा लाई गई हरित क्रान्ति तभी संभव हुई थी जब उन की खोजों को अंग्रेज़ी शोधपत्रों की कैद से निकाल कर पंजाब, हिमाचल के कृषि विश्वविद्यालयों ने हिन्दी पंजाबी के माध्यम से किसानों तक पहुंचाया था।

हिन्दी भारतीय भाषाओं, विशेषतः उत्तर भारत की भाषाओं के मध्य एक सरल सम्पर्क सूत्र है। हिन्दी से किसी अन्य भारतीय भाषा में अनुवाद करना उतना कठिन नहीं होता जितना कि इस देश से हज़ारों मील दूर की अंग्रेज़ी जर्मन आदि से अनुवाद करना। इस लिए अच्छा तो तभी रहे जब विज्ञान की पढ़ाई प्रारम्भ से ही मातृभाषा के माध्यम से हो। बच्चे आस पास के वातावरण से बहुत कुछ सीखें। विज्ञान तो प्रयोग से सिखाया जा सकता है, केवल किताबों के रटने से नहीं। यह प्रत्यक्ष अनुभव ही आगे चल कर छात्रों के मौलिक चिन्तन को बढ़ावा देता है। विश्वविद्यालयों में भी अनुसन्धान राष्ट्रभाषा के माध्यम से हो तो उस का स्तर अधिक ऊंचा होगा क्योंकि उस में मौलिक चिन्तन होगा पिष्टपेषण नहीं। इस बात की आवश्यकता जरूर रहेगी कि कुछ सीमित संख्या में वैज्ञानिक पृष्ठभूमि वाले विभिन्न विदेशी भाषाओं के ज्ञाता विद्वान् विदुषियां देश में हों जो किसी भी नये आविष्कार की पूरी सूचना हिन्दी में अनूदित कर विश्वविद्यालयों में उपलब्ध करा दें ताकि वहां के शोध छात्र उस खोज से आगे बढ़ कर नई खोज कर सकें।

अभी तक यह संभव नहीं हुआ यह हमारा दौर्भाग्य है। वैज्ञानिक तकनीकी साहित्य के अनुवाद होते रहे लेकिन आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली लेखकों, अनुवादकों तक न पहुंच पाने से पारिभाषिक शब्दावली समान न हो कर एक ही संकल्पना के लिए अनेक पर्याय प्रचलित हो गये। 1986 में भारत सरकार ने इस अराजकता को दूर करने के लिए आधारभूत वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों के लिए अखिल भारतीय पर्यायों की पहचान की एक परियोजना हाथ

में ली। यह अच्छा प्रयास रहा है क्योंकि इस योजना में आधारभूत वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों के क्षेत्रीय भाषाई पर्याय इकट्ठे किये जाते हैं। फिर इन सब पर्यायों को क्रमबद्ध करके अखिल भारतीय संगोष्ठियों में ऐसे शब्दों की पहचान व निर्माण किया जाता है जो सभी अथवा अधिकांश भारतीय भाषाओं के द्वारा मान्य हो सकें।

मेरे समक्ष इस अखिल भारतीय शब्दावली की अर्थशास्त्र और वाणिज्य से सम्बद्ध पुस्तिका है जिस में केवल 1100 शब्द संगृहीत हैं। मुझे यह कार्य सराहनीय लगा है। यह कार्य अन्य वैज्ञानिक क्षेत्रों की शब्दावली के बारे में आगे बढ़ा या नहीं, मुझे मालूम नहीं पर यह प्रयास सराहनीय है। इस में सर्वप्रचलित अंग्रेज़ी, उर्दू तथा क्षेत्रीय शब्दों को भी शामिल किया गया है जैसे अंग्रेज़ी के बजट, बांड, बोनस, आफर, ओवर टाइम, पेटेंट, रिज़र्व आदि, उर्दू के दलाल, सूद, कारोबार, सौदा, लागत, खाता आदि। राष्ट्रभाषा हिन्दी को तो खिचड़ी भाषां बनना ही है इसी में उस का स्वाद है। संस्कृत के जो शब्द भारत की सभी भाषाओं में चलते हैं थोड़े बहुत उच्चारण भेद के साथ उन्हें सार्वभाषिक मान कर सार्वभाषिक कोश बनाना चाहिए। हिन्दी के न्याय, प्रतिपक्ष, पक्ष, प्रतिज्ञापत्र को तेलगू, मलयालम में न्यायम्, प्रतिपक्षम्, पक्षम्, प्रतिज्ञापत्रम् कहते हैं तो क्या फर्क पड़ता है ?

ooo

लोकसंस्कृति के अंग : मह/मेले

महाभारत के उद्योग पर्व में महर्षि वेदव्यास ने सर्वदर्शी उस व्यक्ति को बताया है जो लोक जीवन से जुड़ा है, जो लोक जीवन का प्रत्यक्षदर्शी है।

प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः।

उद्योगपर्व 41.36

लोकजीवन का प्रत्यक्ष दर्शन होता है लोक साहित्य में, लोक संगीत में, लोक नृत्यों में और लोक नाट्यों में। लोकसंस्कृति के ये सभी अंग लोक जीवन की कहानी कहते हैं, लोकमानस की प्रवृत्तियों और मूल्यों का प्रतिबिम्ब होते हैं। ये ऐसे वृक्ष हैं जिन की जड़ें तो अतीत की गहराइयों में होती हैं पर हर नये युग का वसन्त उन पर नये फूलों और पत्तियों का सम्भार सजा देता है।

भारतीय लोक संस्कृति की सब से महत्त्वपूर्ण विशेषता उस की धार्मिक परम्परा है जो हज़ारों वर्षों से निरन्तर प्रवहमान है। अथर्ववेद का पृथिवीसूक्त लोक संस्कृति का प्रथम राष्ट्रगीत और लोकगीत है जिसमें मातृभूमि का वर्णन करते हुए ऋषि कहता है कि इस भूमि पर अनेक बोलियों को बोलने वाले लोग मिल कर रहते हैं (जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् 12.1.45) यहां आनन्द से विजय गान करते हुए भूमिपुत्र नाचते हैं, गाते हैं, उत्सव पर्व मनाते हैं (यस्यां नृत्यन्ति गायन्ति व्यैलवाः। वही. 49)। ऋषि की यह कामना है कि इस भूमि पर जो ग्राम हैं, जंगल हैं, जो सभाएं और समितियां हैं, जो सार्वजनिक सम्मेलन हैं उन में मातृभूमि की प्रशंसा के गीत गूंजते रहें। (ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधिभूम्यां, ये संग्रामास्समितयस्तेषु चारु वदेम ते) वही 56

आज भी देश के लाखों गांवों में देवी देवताओं से, पीरों पैगम्बरों से, सतियों और वीरों से जुड़े अनेक मेले लगते हैं। प्राचीन काल में इन्हें मह कहते

थे। ऐसे ही एक धनुर्मह में सीता स्वयंवर हुआ था। ऐसे ही एक धनुर्मह के आयोजन में कंस ने कृष्ण और बलराम को मल्लयुद्ध का प्रदर्शन करने को आमन्त्रित किया था। हरिवंश पुराण में वर्णन मिलता है कि वन में रहते हुए कृष्ण तथा बलराम को जब यह सूचना मिली कि व्रजभूमि के ग्वाले इन्द्रमह की तैयारी कर रहे हैं तो उन्होंने इन्द्रोत्सव के स्थान पर गिरिमह का सुझाव देते हुए कहा था-देवता इन्द्र की पूजा करते रहें हमारे देवता तो गोवर्धन पर्वत हैं जिन से हमारी जीविका चलती है। पर्वत हमारे देवता हैं, वन हमारे देवता हैं, गायें हमारी देवता हैं। लोगों ने उन की बात मानी और धूम धाम से गोवर्धन पूजा का मेला मनाया। जैन साहित्य में भी ऐसे बीसियों मेलों खन्दमह, जक्खमह, सियमह, गंगामह, धनुर्मह आदि का उल्लेख है। महाराज अशोक के शिलालेखों में भी ऐसे मेलों का तथा विहार यात्राओं का उल्लेख है। देश के सभी भागों में आज भी ऐसे सैंकड़ों त्यौहार, यात्राएं, मेले चलते हैं जिन के माध्यम से हमारी सांस्कृतिक विरासत हम तक पहुंची है। इस विरासत को संभालने की आवश्यकता है। अतीत में भी इन के माध्यम से हमारे व्यापार शिल्प, उद्योग, ललित कलाओं, संगीत, नृत्य, नाट्य सभी को बढ़ावा मिलता रहा है। भूतकाल के ये वरदान कैसे हमारे भविष्य के उत्थान के काम आ सकें। विरासत में मिली इन शक्तियों को कैसे विकसित करके राष्ट्रीय एकता और राष्ट्र निर्माण के लिए उपयोगी बनाया जा सके इस पर हम सब को चिन्तन करना चाहिए। इन पर्वों, त्यौहारों और यात्राओं का उपयोग स्वस्थ मनोरंजन के द्वारा जनचेतना को जागृत करना भी होना चाहिए। आज के युग में जन संचार से जुड़े लोगों, प्रिंट मीडिया तथा इलैक्ट्रानिक मीडिया की बहुत बड़ी जिम्मेदारी है कि वे इस विरासत को सम्भालने, संवारने और इसे स्वस्थ दिशा देने में अपना योगदान करें।

ooo

हमारा सांस्कृतिक त्यौहार होली

भारत गांवों में बसता है और गांव का जीवन प्रमुख रूप से खेती पर आश्रित है। यही कारण है कि भारत की संस्कृति के विभिन्न पहलू कृषि जीवन से जुड़े हैं। यहाँ के पर्व उत्सव, गीत नृत्य और मेले त्यौहार प्रायः उन्हीं दिनों में ही हैं जब किसान को खेती के काम से कुछ फुरसत रहती है या जब प्रकृति उस के लिए हर्ष का अवसर प्रस्तुत करती दिखाई देती है।

रंगों का त्यौहार होली भी कृषक जीवन में प्रसन्नता की अभिव्यक्ति का त्यौहार है। अगहन, पूस में तो किसान खेती के काम में जुटा रहता है। पूस माघ में ईख काट कर गुड़ तथा राब बनाने का काम रहता है। पूस की ठिठुरन घर से बाहर भी निकलने का अवसर नहीं देती। फागुन में शीत कम हो जाने से और वसन्त का आगमन होने से सर्वत्र प्रसन्नता का वातावरण छा जाता है। फागुन में गेहूं और जौ की बालियां दीखने लगती हैं। उनमें दूध पड़ने लगता है तथा दाना बनने लगता है। किसान के परिश्रम का फल खेतों में लहलहाता नज़र आता है। बस फसल कटने की प्रतीक्षा है। हरे भरे खेतों को देखकर कृषक परिवार झूम उठते हैं खुशी से और यह खुशी होली के रंगों भरे त्यौहार में स्पष्ट प्रकट होती है। रसिया मस्त महीना फागुन को रे।

फागुन सुदी अष्टमी को होलिकाष्टक (दिन) लग जाते हैं। तब से लेकर होली की समाप्ति तक यात्रा बन्द रहती है। यात्रा बन्द होने के तीन दिन बाद रंग छिड़कनी एकादशी होती है। ढाक के पेड़ों पर खिले टेसू के फूलों से रंग बनाया जाता है। बच्चे तभी से रंग खेलना शुरु कर देते हैं। फिर आता है होलिका दहन। फाल्गुन सुदी की पूर्णिमा की रात को होली जलाई जाती है। थोड़े दिनों में फसल कट कर घर आएगी, पशुओं के लिए नया भूसा भी आएगा। अनाज और भूसा रखने को घर का पुराना कूड़ा करकट और भूसा निकालना आवश्यक है अतः इस दिन सब कूड़ा करकट, भूसा, सूखे पत्ते इकट्ठे

करके आग जलाई जाती है और आग के इर्द गिर्द इकट्ठे होकर गाने बजाने तथा नाचने का कार्यक्रम चलता है। होली की आग में गेहूं और चने की बालियां भून कर खाई जाती हैं। किसान की खुशी का ठिकाना नहीं है। वह अपने देवी देवताओं का धन्यवाद करता है, गुरुजनों के पैर छूता है और मनौती मनाता है कि खेती की फसल सकुशल घर पहुंचे। अपने यहां अग्नि प्रधान देवता है जिस की उपस्थिति हिन्दुओं के विशेष संस्कारों में तथा विशेष त्यौहारों में आवश्यक होती है। अग्नि में शुद्ध करने का विशेष गुण है। रोगों के कीटाणुओं को नाश करने में यह विशेष सहायक होती है। ॠतु परिर्वतन के समय रोगों की आशंका रहती है, सम्भवत: इस लिए भी होलिका दहन का रिवाज़ चला होगा।

वैसे होलिका दहन के साथ भक्त प्रह्लाद की पौराणिक कथा जुड़ी है। हिरण्यकशिपु राक्षस ने अपने पुत्र प्रह्लाद को नाना यातनाएं देकर उसे विष्णु की भक्ति के मार्ग से हटाना चाहा था परन्तु वह दृढ़ भक्त तनिक भी विचलित न हुआ। अन्त में उसे जीवित जला देने का कार्यक्रम बनाया गया। प्रह्लाद की बुआ होलिका को अग्नि में न जलने का वरदान प्राप्त था। चिता जला कर होलिका प्रह्लाद को गोद में लेकर बैठ गई ताकि प्रह्लाद जलती चिता में जल जाए हुआ उलटा ही। होलिका जल गई परन्तु आग की लपटों ने प्रह्लाद को छूआ तक नहीं। तब से लेकर पाप के प्रतीक रूप में होलिका को हर वर्ष जलाया जाता है। मथुरा से 53 किलोमीटर दूर भक्त प्रह्लाद के मन्दिर में वहां का पुजारी आज भी प्रह्लाद की भांति होली की जलती आग में प्रवेश करता है और अपार जनसमूह के देखते देखते अंगारों के पार हो जाता है। भक्ति और श्रद्धा की अनोखी अभिव्यक्ति होती है वहां!

मथुरा वृन्दावन की होली का तो कहना ही क्या ? वसंत पंचमी के बाद से होली का शुभारम्भ हो जाता है और दिन प्रतिदिन होली तीव्रतर होती चली जाती है। मन्दिरों में राधा कृष्ण का शृङ्गार पंचरंग अबीर तथा फूलों से किया जाता है। टेसू के रंग से भरे हौज और भगौने, लाल, हरे, जामुनी, गुलाबी रंगों की बहार, नृत्य में मगन पुरुषों की टोलियां, कहीं फाग गाती रमणियों की पंक्तियां सब देखते ही बनता है। सब ब्रजवासी और ब्रजनारियां कृष्ण से होली खेलने घरों से बाहर निकल पड़ते हैं। कहीं रंग भरे गुब्बारे चल रहे हैं तो कहीं

पिचकारियां रंगों की धार छोड़ रही हैं। गुलाल की मुट्ठियां उड़ उड़ कर आकाश को लाल कर रही हैं। रसिया गा रहे हैं, नृत्य में पैर थिरक रहे हैं और ब्रजवासिनियां झूमती हुई गाती हैं- मैं तो नारी बिराने घर की तुम में भरे भारी खोट। रसिक गोविन्द वहीं जाय खेलो जहां तिहारी जोट।।

इस फागुनी मौसम में जब प्रकृति ही मस्ती में बौरा उठती है तो भला रसीले रसिया और रसवन्तियां कैसे शान्त रहें ? फूलों से लदे वृक्षों के साथ मदमाता पवन भी तो होली खेलता दीखता है। ब्रज की अमराइयों और लताकुंजों के मोहक रूप को देख कर कवि सूरदास भी रसविभोर हो गा उठे थे-

देखत वन ब्रजनाथ आज अति उपजत है अनुराग।
मानो मदन बसन्त मिलि दोउ खेलत डोलत फाग।।
द्रुम गन मध्य पलाश मंजरी उठत अगन की नाई।
अपने अपने मेल मनोहर होरी हरखि लगाई।।
केकी कीर कपोत और खग करत कुलाहल भारी।
जनपद लज्जा त्यागि परस्पर देत दियावत गारी।।

होली का बिम्ब कैसा सुन्दर उभरा है कवि के इस प्रकृति वर्णन में। लगता है सचमुच कामदेव और वसन्त दोनों फाग खेल रहे हैं। वृक्षों के बीच खिली लाल पलाश मंजरी होली दहन की लाल लपटों का दृश्य उपस्थित कर रही है। पक्षियों का कोलाहल ऐसा मचा है मानो गांव के होलियार लज्जा त्याग कर ठिठोलियों के ठसके लगा रहे हों। नये नये पत्तों और फूलों से सजे वृक्ष ऐसे लगते हैं कि ऋतुराज की सभा में रंग बिरंगे वेष धारण कर के होली मनाने बैठे हों। कुंज कुंज में कोयलें कूजन कर रही हैं मानों कुल वधुएं होली की बहार में शर्म लाज छोड़ कर अटारियों पर चढ़ कर फाग गा रही हों। पुष्पपराग को हाथ में लिए पवन चारों दिशाओं में प्रेमियों का पीछा कर रहा है। वृन्दावन की प्रकृति का यह होली मनाना महाकवि सूरदास को अपनी वर्णन शक्ति से बाहर की वस्तु प्रतीत होता है और वह कहते हैं-

और कहां लौ कहूं कृपानिधि वृंदा विपिन समाज।
सूरदास प्रभु सब सुख क्रीडत कृष्ण तिहारे काज।।

होली हुड़दंगी का त्यौहार है जिस में शिष्टता और मर्यादा का मुखौटा उतार कर नर नारी मानव मन की सहज प्रवृत्तियों को स्वच्छन्द रूप से प्रकट कर पाते हैं। कोई ऊंच नीच का भेद नहीं, कोई बड़े छोटे का भेद नहीं, सब रंगों में सराबोर हुए दिल खोल कर मिलते हैं, हंसते हैं, गाते हैं, नाचते हैं। इस अनोखे त्यौहार में लाठियां और कोड़े भी प्रेम रस में भीग कर सुकोमल हो जाते हैं। राजस्थान के एक कस्बे भिनाय में रंग खेलने से पूर्व कोड़ामार होली होती है। पूरा गांव दो भागों में बंटा है- बाज़ार के एक तरफ के लोग राजा का दल बनते हैं और दूसरी ओर के रानी का दल। हिन्दु, मुसलमान, ईसाई का भेद बरते बिना यह दोनों दल सूत और जूट के बने कोड़े लेकर सामने आते हैं। ज्योतिषी से मुहूर्त निकलवा कर लड़ाई शुरु होती है, पहले बच्चों की, फिर युवकों और बुजुर्गों की। इस जंग में भाग लेने और मार खाने का उत्साह भी अनोखा होता है। बरसाने की लट्‌ठमार होली प्रसिद्ध है। नंदगांव के गुसाईं बरसाने की संकरी रंगीली गली में सजी सजाई बरसाने की गोपियों के हाथों लाठी के प्रहार खाने को उत्साह से पहुंचते हैं। मुख पर घूंघट डाले बरसाने की गोपियां लाठियों के प्रहार करती हैं जिन्हें गुसाईं अपनी ढालों पर रोकते हैं। फिर चलता है रंग और होली का संगीत।

कौन गांव के कुंवर कन्हैया रामां कौन गांव की गोरी रे रसिया।
नंद गांव के कुंवर कन्हैया रामां बरसाने की गोरी रे रसिया।।

ठिठोलियां और गालियां भी इस त्यौहार में बुरी नहीं मानी जातीं। रंगीले जोगीरे और कबीरे भी होली में गाये जाते हैं। नाथपंथी जोगियों के संगीत की नकल पर जोगीरे तथा कबीर पंथी साधुओं के संगीत की नकल पर कबीरे लोक जीवन में सरस रंग घोलते हैं। छोटे छोटे बालक जोगियों का स्वांग रचाए गाते चलते हैं जोगीरे और कबीरे जिन में कहीं सिद्धान्तों की झलक मिलती है तो कहीं प्रेमियों का मिलन राग, कहीं समसामयिक घटनाओं का उल्लेख मिलता है तो कहीं राष्ट्रप्रेम की भावनाएं। एक उदाहरण प्रस्तुत है जिस में रामविजय की चर्चा है

जोगी बालक का प्रश्न है-

कौन नाथ को टीका सोहे कौन नाथ को माला।
कौन नाथ को गद्दी सोहे किसका मुंह है काला।।
संगी देख देख पर देख जोगीरा आ रा रा रा ऽऽऽ

उत्तर मिलता है

रामचन्द्र को टीका सोहे सीता को है माला।
विभीषण को तो गद्दी सोहे रावण का मुंह काला।
संगी देख देख पर देख कबीरा आ रा रा रा ऽऽऽ।

पूर्वी पर्वतीय प्रदेश कुमाऊं में होली की बैठकें प्रसिद्ध हैं। सप्ताह भर चलने वाली होली में आज इस के यहां और कल उसके यहां होली बैठक होती है जिस में ढोलक मजीरे की थापें, हारमोनियम पर आलाप और गायकों के मधुर सुर गूंज उठते हैं। घर घर में होली मिलन चलता है। अबीर गुलाल और रंगों की क्रीड़ा होती है, और इसके बाद पान, सौंफ़, सुपारी और गुझिया से स्वागत होता है। छोटे अपने सयानों के चरण छू कर अबीर गुलाल का टीका लगवाते हैं तथा असीस पाते हैं।

खुशियों भरा यह त्यौहार देवर भाभियों और जीजा सालियों के लिए विशेष महत्त्व रखता है। नये जीजा जी और नयी भाभी की पहली होली को चिरस्मरणीय बनाने की चाह सालियों और देवरों को रहती है।

बड़े बड़े नगरों में होली की निश्छल उमंग अब कम होती जा रही है और उस का स्थान हुल्लड़बाजी ले रही है। टेसू के फूलों का रोगनाशक रंग कम देखने को मिलता है, उस का स्थान ले लिया है ज़हरीले रंगों ने, कीचड़ कोलतार ने। विश्वविद्यालयों के छात्रावासों में जहां रूठे मित्र पुनः गले मिलने को होली का इन्तज़ार करते थे तथा प्रेमभरा वातावरण होता था वहां अब कभी कबार गुण्डागर्दी की घटनाएं सुनने को मिलती हैं। उत्साह भरे पावन त्यौहारों की शोभा को यदि हम कुत्सित न करें तो ये हमारे जातीय जीवन में उल्लास और शक्ति के बहुत बड़े स्रोत हो जाते हैं। होली के रंगों की फुहार वर्ण, जाति, ऊंच, नीच, सभी भेद खोकर हमें एकरंग कर रही है–

रंग की परत फुहार।
बरसे होली बरसे फाग।
जो नर जीवें खेलें फाग।

०००

श्रीनगर यात्रा की स्मृतियां

14 जुलाई 1995 शुक्रवार की दुपहर। इण्डियन एयर लाइन्स की एयर बस श्रीनगर हवाई अड्डे पर उतरी है। लगभग पांच वर्ष के बाद आज श्रीनगर की वादी में मैं प्रवेश कर रही हूं। उत्सुकता और आशंका दोनों ने मन को घेर लिया है। पता नहीं यह पुराना परिचित शहर अब बदली परिस्थितियों में कैसे जी रहा होगा ? हवाई अड्डे से बाहर निकलते ही खादी ग्रामोद्योग बोर्ड के एक कार्यकर्त्ता मुज़फ्फर ने स्वागत किया और कहा कि चलिए गाड़ी में बैठिये। मुझे यह देख कर सन्तोष हुआ कि कोई बन्दूक धारी सुरक्षा गार्ड हमारी गाड़ी के साथ नहीं है। सम्भवतः स्थिति में सुधार आ गया होगा अन्यथा जैसे प्रो. मनसाराम पुरी ने बताया था कि दो वर्ष पूर्व तो हवाई अड्डे से होटल तक वह सुरक्षा-गार्डों के नियन्त्रण में ही पहुंचे थे। कार चल पड़ी और खिड़की से बाहर झांकती हुई मैं पुरानी यादों में खो गई। कश्मीर विश्वविद्यालय की किसी बैठक या गोष्ठी में या किसी अन्य इदारे की बैठक में भाग लेने जब भी आती थी तो कभी होटल में नहीं ठहरती थी। अक्सर भूषण भैया स्कूटर लेकर लेने आ पहुंचते और मग्घरमल बाग में स्थित उस घर में ले जाते जिस में वह बीसियों साल से किराये पर रह रहे थे। कर्नल फतेह अली खान का वह घर हमारे लिए अपना ही घर था। अम्मी अब्बाजान और उनके सभी बच्चे भैया, भाभी और बच्चों को परिवार के सदस्यों की तरह ही मानते थे, किरायेदारों की तरह नहीं। घर पहुंचते ही कोई बच्चा ऊपर खबर पहुंचा देता कि बड़ी बुआ जम्मू से आई हैं, तो न्योता आ पहुंचता। अम्मी कहवा भी पिलातीं और जम्मू में घर के हर व्यक्ति का हाल चाल पूछतीं। छिम्मी चारपाई पर लेटी लेटी हमारी बातों का आनन्द लेती। वह खुद चल फिर नहीं सकती थी इस लिए अम्मी अक्सर उसी के कमरे मे बैठ कर बतियाती ताकि उसका दिल लगा रहे। छिम्मी का मंगेतर डेनमार्क में था और वह मुझ से डेनमार्क के बारे में बातें सुनते हुए भावुक हो उठती। उसे आशा थी कि ठीक हो जाने

पर इस का मामू जान मंगेतर उसे ब्याह कर ले जाएगा और वह उस नयी दुनियां में नये ढंग से जीएगी। पर अकाल मृत्यु ने उसके सब सपने तोड़ दिये। उसके मरने पर फातिहा में मैं भी शामिल हुई थी। पिछले पांच सालों में सिर्फ एक बार खालिद भाई जम्मू आये थे, भैया भाभी और बच्चों से मिले तो कहने लगे कि श्रीनगर वह नहीं रहा जो कभी था। मुझे भी लग रहा था कि श्रीनगर बदल सा गया है। सड़कों पर कोई चहल पहल दिखाई नहीं दे रही थी। कोई इक्का दुक्का ही सड़क किनारे चलता दिखाई दिया। बरज़ला, राम बाग, इकबाल पार्क, रैज़ीडैन्सी रोड सब सूने सूने थे। खैर गाड़ी वैलकम होटल के आंगन में रुकी। हम उतर कर लॉबी में बैठे तभी होटल का मालिक भी पास आ बैठा और कहने लगा, चार साल होटल बन्द रहा। अब छः महीने पहले ही इसे खोला है ताकि इतनी बड़ी बिल्डिंग की देखभाल तो कर सकूं। यहां डर की कोई बात नहीं है। जिन विदेशी पर्यटकों को अगवा किया गया है उन के मुल्कों की ऐम्बैसियों के लोग तथा जर्नलिस्ट भी यहीं ठहरे हैं। अभी परसों यहां प्रैस वालों ने बन्धक बनाये गये पर्यटकों की महिलाओं से बात चीत की थी जो टी. वी. पर प्रसारित हुई आप ने देखी होगी। डल झील के किनारे के इस क्षेत्र में आप सुरक्षित घूम सकते हैं। प्रो. पुरी के पूछने पर उसने बताया कि इस वर्ष काफ़ी अधिक संख्या में यात्रियों के कश्मीर आने की उम्मीद थी। हमारे यहां की भी अच्छी बुकिङ्ग थी पर इस बन्धक दुर्घटना ने मामला बिगाड़ दिया है और लोगों ने अपनी बुकिङ्ग रद्द करवा दी है। अब चार पांच दिन से ऐम्बैसियों के ये लोग यहां ठहरे हैं। इन्हें न खाने पीने की चिन्ता है न आराम के लिए फुर्सत। सुबह सुबह ही गाड़ियां लेकर कन्ट्रोल रूम चले जाते हैं और रात को लौटते हैं। तभी मैंने देखा कि एक विदेशी पर्यटक अपना कुछ सामान लिए होटल में प्रविष्ट हुआ है। वह वहीं हमारे निकट आ बैठा। होटल का मालिक जा चुका था। मैंने पूछा तो उसने बताया कि मैं नार्वे का एक पत्रकार हूं। अपने देश के बन्धक बनाए गये निवासी की खोज खबर की सूचना एकत्रित करने आया हूं। उस के चेहरे पर चिन्ता की रेखाएं स्पष्ट थीं। उसने पूछा–आप क्या सोचते हैं कल क्या होगा ? क्या बन्धक पन्द्रह तारीख की सीमा रेखा बीत जाने पर सुरक्षित बचेंगे। उसे आश्वस्त करते हुए हमने कहा–आप चिन्ता न करें यह सीमा रेखा की तिथि बढ़ा दी जाएगी। इतने देशों की और यहां के उग्रवादी संगठनों की अपीलें बन्धकों को छोड़ देने के लिए की गई हैं उन का प्रभाव

जरूर पड़ेगा। हमारी सीमित सी जानकारी से वह आश्वस्त हुआ या नहीं कह नहीं सकती पर उसने फिर मिलेंगे कह कर हम से विदा ली और सामान कमरे में रखकर होटल से बाहर चला गया।

हम भी खाना खा कर कुछ विश्राम के बाद बाहर निकले तो शिकारे वाले वाले घाट के पास बैठे हमें बुलाने लगे। सड़क से लगती झील डल की बनेरी पर हम भी बैठ गये और बात करने लगे। एक प्रबुद्ध दिखाई देते हुए हाउस बोट वाले ने कहा, जनाब हम तो दोनों ओर से पिस रहे हैं एक ओर उग्रवादी हमें दबाते हैं दूसरी ओर सेना के जवान। कामकाज ठप्प है। हमारी आजीविका तो देशी विदेशी पर्यटकों पर चलती थी। पता नहीं किस की नज़र लग गई है हमारे कश्मीर को। ज़रा से हालात सुधरने लगते हैं तो फिर कुछ न कुछ मुसीबत आ जाती है। हममें से बहुतों ने यह काम छोड़ कर मज़दूरी पेशा अपना लिया है। वस्तुतः हम पैदल घूमने से पहले स्थिति जानना चाहते थे। उसने हमें उत्साहित करते हुए कहा कि यहां कोई डर नहीं है और रात के आठ नौ बजे तक लोग यहां घूमते हैं जबकि पहले ऐसा नहीं था। दूसरे दिन शिकारे पर घूमने का वायदा करके हम डल झील के किनारे किनारे नेहरू पार्क से आगे तक बढ़ गये। थोड़ी थोड़ी दूरी पर सी. आर. पी. के जवान बन्दूकें ताने अपने बंकरों में दिखाई दे रहे थे। नेहरू पार्क दूर से सुनसान दिखाई दे रहा था। सोचा कि दूसरे दिन बैठक के पश्चात् शिकारे से जाकर भीतर से देखेंगे और अवसर मिला तो चश्माशाही का ठंडा पानी पीने भी चलेंगे।

दूसरे दिन प्रातः सुरक्षा गार्ड भी होटल में आ पहुंचे। उनके संरक्षण में हम सन्तूर होटल पहुंचे जहां बैंकर्स की कान्फ्रैंस के कारण काफी चहल पहल थी। खादी बोर्ड की हमारी बैठक भी दो घण्टे चली। पता चला कि प्रायः सभी सरकारी, अर्धसरकारी बैठकें यहीं होती हैं। खाने के बाद हम होटल लौटे। आज विदेशी दूतावासों के वहां ठहरे अधिकारी कुछ स्थानीय लोगों के साथ बार-बार आ जा रहे थे। नार्वे के उस पत्रकार से भेंट हुई तो पता चला कि स्थिति वहीं की वहीं है।

शाम लगभग पांच बजे चाय पी कर हम होटल से बाहर निकले तो शिकारे वालों ने फिर घेर लिया। जनाब डल की सैर कर लीजिए। नेहरू पार्क तक

ही चलिए, देखिए कैसा अच्छा मौसम है। क्यों डा. घई चलेंगी आप ? मुझ से पुरी साहब ने पूछा तो मैंने एकदम कहा जरूर चलेंगे पुरी साहब, आपने तो कल वायदा किया था इन से! मैं डल झील में खड़े शिकारों ओर किश्तियों की ओर देखने लगी। उस छोटी सी किश्ती पर बैठा वह किशोर पता नहीं किस की प्रतीक्षा कर रहा है? उस के चेहरे पर उदासी सी है और नयन कभी पूरब की ओर देखते हैं कभी पच्छिम की ओर कभी घाट की सीढ़ियों की ओर। शिकारे पर कदम रखते हम दो यात्रियों को देखते ही उस की आंखों में चमक आ गई है और उसके हाथ फुर्ती से चप्पू पर जा जमे हैं। हमारा शिकारा डलके बीच जा पहुंचा है और उस किशोर ने अपनी किश्ती हमारी ओर मोड़ ली है। कुछ ही क्षणों में वह हमारे निकट आ पहुंचा है और किश्ती शिकारे के साथ सटा कर पूछ रहा है-आप कश्मीर का केसर खरीदेंगे ? मैंने कहा नहीं नहीं। जरूरत नहीं है। अच्छा आप ज़रा देखिये तो सही बढ़िया असली केसर है पामपुर का। एक एक पंखुड़ी चुन कर हमने इकट्ठा किया है। कहवे में डालिए, पुलाव में डालिए, बड़ी शानदार चीज़ है जनाब! कश्मीर के इलावा यह असली केसर आपको कहीं और नहीं मिलेगा। वह किशोर अपनी सेल्ज़मैनशिप का प्रमाण अपनी युक्तियों से दे रहा है और सचमुच मुझे याद दिला दी है उसने विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य के रचयिता कश्मीर के संस्कृत महाकवि बिल्हण की पंक्तियों की कि कविता और केसर ये दोनों एक साथ कश्मीर भूमि की क्यारियों में ही खिलते हैं। लाल पीली केसर की पंखुड़ियां तो अब भी क्यारियों में खिल रही हैं पर क्या कश्मीर की कविता भी कविकण्ठों से स्वच्छन्द मुखरित हो पा रही हैं ? बन्दूक के भय से सिले ओठ उसे कहां अभिव्यक्त होने देते हैं ? हां परिस्थितियों के वशीभूत हुए बिल्हण को यह अपना कश्मीर प्रदेश विवश होकर छोड़ना पड़ा था और उसने दूर दक्षिण में विक्रमाङ्कदेव राज्य में आश्रय लिया था। पर अपनी जन्मभूमि की स्मृतियों ने उसे छोड़ा नहीं। वे तो टिकी रहीं उसके हृदय के किसी कोने में तब तक जब तक उसने अपने महाकाव्य के पच्चीसवें सर्ग में उन्हें काव्यात्मक अभिव्यक्ति नहीं दे दी। आज भी पता नहीं कितने कवि बलात् अपनी जन्मभूमि से निर्वासित होकर इसकी स्मृतियों को अपने हृदयों में संजोए घुटन अनुभव कर रहे होंगे और न जाने कितने कवि आतंकवाद की अंधेरी गुफा में फंसे उस सुनहले प्रभात की प्रतीक्षा कर रहे होंगे जब उनकी वाणी वितस्ता की स्वच्छन्द लहरों की तरह मुखरित

हो उठेगी। मेरा ध्यान अपनी ओर खींचते हुए वह किशोर फिर कहता है-देखिये पानी में घिस कर दिखा रहा हूं जितना घिसूं उतना ही रंग इन पंखुड़ियों से निकलता चलेगा। मैंने उसे पूछा कि तुम जम्मू या दिल्ली जा कर अपना माल क्यों नहीं बेचते तो उसने उत्तर दिया-हम ग़रीब कहां जाएंगे? पैसे वाले व्यापारी तो पहले ही दिल्ली चले गये हैं हम भला रास्ते का किराया कहां से जुटा पाएं? सुबह से किश्ती लेकर बैठा हूं, एक भी गाहक नहीं मिला। सच कह रहा हूं मां जी! मैं भी आप का बेटा हूं, अभी शाम होने से पहले घर भी लौटना है नहीं तो फौज के जवान रास्ते में रोकेंगे। उस के शब्दों ने मुझे पिघला दिया है और मैं कहती हूं अच्छा बेटा पांच ग्राम केसर दे दो और अपना पता भी दे दो, मौका लगा तो तुमसे केसर जम्मू मंगवाएंगें। पचास का नोट लेकर उसके चेहरे पर सन्तोष की रेखाएं उभर आई हैं और उसने अपने हाथ से लिफाफे के टुकड़े पर अपना नाम लिख कर मुझे दे दिया है। हम आगे बढ़े हैं तो एक और किश्ती वाला पत्थरों के आभूषण बेचने आ पहुंचा है। उस से भी हमने दो सैट खरीद लिये हैं। नेहरूपार्क पहुंच गये हैं पर वहां खड़े सी. आर. पी. के जवान भीतर जाने की अनुमति नहीं देते। हम निराश होकर वापिस लौट आते हैं। सुरक्षा गार्डों को हमने पहले ही लौटा दिया था। 16 जुलाई की दुपहर हमें जम्मू लौटना है अत: उन्हें प्रात: आने को कहा था ताकि उनके साथ ही चश्माशाही और निशात बाग़ जा सकें। प्रात: दस बजे हम चश्माशाही पहुंचे हैं। सैनिकों के अतिरिक्त एक भी व्यक्ति वहां दिखाई नहीं दिया। मुझे याद आ रहे हैं वे दिन जब चश्मे का पानी पीने के लिए लाइन में खड़ा होना पड़ता था। और हरी हरी घास के मैदान में सपरिवार टोलियां बैठी जश्न मना रही होती थीं। यह चश्मा जिस ने मुग़लों के समय से इतिहास के कई दौर देखे हैं आज इस दौर को भी देख रहा है। हमने हाथ मुंह धोकर पानी पिया और इस आशा से निशात की ओर चले हैं कि शायद वहां आज रविवार के दिन कुछ रौनक मिलेगी। रास्ते में डल झील के किनारे दूर दूर तक काई से ढके दिखाई दे रहे हैं। हम सब के हृदयों की तरह डल झील का हृदय भी छोटा हो गया है। निशात पहुंच कर ऊंचे चिनार, खिले फूल, हरी घास तो दिखाई देती है पर कहीं कोई मनुष्य नहीं दीखता। हम घूम घाम कर लौट रहे हैं तो एक मनुष्य छोटे से बच्चे की अंगुली पकड़े वहां आता दिखाई देता है। मुज़फ्फर बताता है कि उग्रवादियों ने फिर रोक लगा दी है इसी लिए लोग

नहीं आ रहे। दो सप्ताह पहले यहां काफी लोग आया करते थे। विदेशियों के अपहरण ने लोगों के मन और आशंकित कर दिये हैं।

एक बजे दुपहर तक हमें हवाई अड्डे पहुंचना था। होटल से सामान लेकर हम निकले और रास्ते में आहदू रेस्तरां में नाश्ता करने का निर्णय लिया। फिर वही सुनसान रैज़ीडैन्सी रोड। आहदू रेस्तरां के बाहर दो गाड़ियां लगी थीं। हमारी गाड़ी रुकी तो मैं दरवाज़ा खोल कर बाहर निकलने लगी तो सुरक्षा गार्ड ने एकदम आगे आकर रोका-नहीं मैडम अभी आप रुकें मैं पता करके आता हूं और कार का दरवाज़ा बन्द कर दिया। उसके कर्तव्य पालन ने मेरे मन को झंझोड़ दिया। दो मिनट में ही हमें साथ चलने को कहा। रेस्तरां में कुछ लोग नाश्ता कर रहे थे पर सभी चुपचाप। हम भी नाश्ता करके हवाई अड्डे की ओर चल पड़े।

ooo

डुग्गर संस्कृति में नागपूजा

भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि इसने आगम, निगम, लोक धर्म, सभी को अपने में समेट लिया है। सिन्धु सभ्यता के अवशेषों में कुछ मुद्राओं पर व्यक्ति अंकित हैं जिन की पीठ पर नाग फण उठाए दिखाए गये हैं। प्रतीत होता है कि उस समय नागपूजा भी लोक धर्म का अंग थी। वैदिक साहित्य में वृत्रासुर इन्द्र संग्राम में वृत्र को अहि कहा गया है। ऐसे ही संग्राम के उल्लेख विश्व की कई पुरानी जातियों के इतिहास में मिलते हैं। सुमेर बेबीलोन में बेल मर्दुक और तियमत का युद्ध, मिस्र में रा और एपोप का युद्ध, यूनान में अपोलो और फाइथन का युद्ध, ये सब लोककथाएं किसी नागपूजक जाति की पराजय की ओर संकेत करती हैं, जो विश्व के अनेक भागों में विद्यमान थी। डा. बैनर्जी ने असुर इण्डिया पुस्तक में तथा ए. सी. दास ने ऋग्वैदिक कल्चर पुस्तक में नागों को आर्य जाति से सम्बद्ध माना है परन्तु ग्रियर्सन ने उन्हें अनार्य कहा है। नाग जाति के लोग आर्य थे या अनार्य यह कहना कठिन है पर इस में सन्देह नहीं कि महाभारत, रामायण और पुराणों के समय तक वे भारतीय संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन चुके थे। नीलमत पुराण में छः सौ से अधिक नागों के नाम मिलते हैं। इस पुराण में कश्मीर के अनेक देवी देवताओं, उत्सवों, व्रतों आदि का वर्णन नीलनाग के द्वारा ही किया गया है। कश्मीर के इस पुराण में नागपूजा एक विशाल संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग है। यहां हर, शम्भु, भव, महादेव, कुमार, वासुदेव, जनार्दन, नारायण सभी नाग सूची में शामिल हैं। कहीं सब प्रकार की इच्छाओं को पूर्ण करने वाले 'बड्डा बाबा' हैं। जहां कहीं पानी का छोटा सा भी स्त्रोत दिखाई देता है वहां बावली के किनारे शिला पर उकेरे नाग देवता भी विराजमान होते हैं। इन्हें मोहरे कहा जाता है। जम्मू के पास ही अत्यन्त सुन्दर मानसर झील के किनारे पत्थरों पर उकेरी नाग आकृतियां हैं जिन की कई अवसरों पर पूजा की जाती है। वैशाखी के अवसर पर तो यहां बहुत बड़ा मेला लगता है। लोग झील की प्रदक्षिणा करके नाग मूर्तियों की पूजा करते हैं। बहुत से परिवार बालकों का मुण्डन संस्कार करने को विशेष रूप से यहां आते हैं। नवविवाहित जोड़े इस झील की परिक्रमा पूरी करके नागदेवता

की पूजा करके अपने को सौभाग्यशाली मानते हैं।

इसी प्रकार का नाग पूजा से सम्बद्ध एक मेला श्रावण मास के तीसरे रविवार को शुद्ध महादेव तीर्थ से 18 कि. मी. दूर समुद्र तल से दो हज़ार फुट की ऊंचाई पर एक छोटे से सरोवर पर लगता है। सरोवर के किनारे एक नाग मूर्ति है जिसे भुरदाड़ देवता का नाम दिया गया है। साथ ही काले पत्थर की शिव पार्वती की मूर्तियां भी बनी हैं।

भद्रवाह प्रदेश की कपलास कुण्ड की यात्रा जिसे वासुकि कुण्ड भी कहते हैं नाग पूजा से जुड़ी है। कहा जाता है कि विष्णु भगवान् के वाहन गरुड़ और नागराज वासुकि का जब युद्ध हुआ तो वासुकिनाग भाग कर कैलाश कुण्ड मे जा छिपे थे। यह यात्रा गाठा के वासुकि मन्दिर से निकलती है। वासुकि नाग की स्तुति में गीत गाते भक्त लोग सायंकाल तक वासुकि कुण्ड पर पहुंचते हैं। रात भर जागरण होता है और प्रातःकाल वासुकिनाग की पूजा करके भक्तजन वापिस लौटते हैं। कभी कभी सरोवर में नागराज के दर्शन भी होते हैं। जिसे बहुत शुभ माना जाता है। वासुकि नाग के अतिरिक्त बहुत से अन्य नाग देवताओं के मोहरों का उल्लेख डा. प्रियतमकृष्ण ने किया है जिन की पूजा भद्रवाह प्रदेश में होती है। वे हैं–किलरूनाग, कांसरनाग, खिज्जीनाग, चतुर्भुज नाग, तरबूत नाग, बोंतनाग, मेहन नाग, मेहल नाग, मोर नाग, शांतनू नाग, छेछनाग, सुबार नाग, सागडू नाग। चश्मों के साथ जुड़े तो सैंकड़ों नाग पूरे डुग्गर प्रदेश में मान्य हैं। कश्मीर प्रान्त में भी चश्मों को नाग कहा जाता है। जलस्त्रोतों के साथ नागपूजा जुड़ने का कारण यह हो सकता है कि सर्प प्रायः ऐसे स्थानों के निकट रहते हैं। श्रावण-भाद्रपद में नागपूजा से सम्बद्ध नागपंचमी पर्व भी इसी तथ्य की ओर संकेत करता है। बरसात के दिनों में सर्प बिच्छू कीट आदि विशेष रूप से निकलते हैं। अतः लोग इन दिनों घर की सफाई लिपाई पुताई इत्यादि करते हैं तथा सर्प की विनाशक शक्ति से आतंकित हो इस की पूजा भी करते हैं। नागपूजा का उद्‌गम कहीं से भी हुआ हो, इस में सन्देह नहीं कि नागपूजा से भारत की बहुत सी जातियां प्रभावित रही हैं। उत्तर तथा दक्षिण भारत के कई राज्यों में नागजाति के राजाओं का राज्य रहा। शुद्ध महादेव के लौह त्रिशूल पर भी नाग राजाओं का उल्लेख है।

ooo

जम्मू प्रदेश के कुछ प्राचीन मन्दिर

जम्मू प्रदेश में दो प्रसिद्ध धाम हैं, वैष्णवीधाम और शुद्धमहादेव। वैष्णवीधाम (वैष्णो देवी) कटरा के पास पहाड़ी गुफा के भीतर है जहां तीन पिण्डियाँ लक्ष्मी, दुर्गा और सरस्वती इन तीन देवियों के प्रतीक रूप में विद्यमान हैं। लाखों लोग प्रतिवर्ष इस धाम के दर्शन करने भारत तथा बाहर के देशों से भी आते हैं।

ऊधमपुर के पास चनैनी से कुछ किलोमीटर की दूरी पर शुद्धमहादेव का मन्दिर है। यहां प्राचीन शिव मन्दिर था जिस का पुनरुद्धार बाद में कराया गया है। मन्दिर के बाहर टूटे हुए लौह त्रिशूल पर ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण अभिलेख विभुनाग के पुत्र का है। लिपि का समय तीसरी या चौथी शताब्दी ई. का है जिस से प्रतीत होता है कि उस समय यह प्रसिद्ध तीर्थ रहा होगा। आजकल भी आषाढ़ की पूर्णिमा पर यहां मेला लगता है और आस पास के पहाड़ी प्रदेश के लोग बहुत बड़ी संख्या में यहां आते हैं। जम्मू की लोक-संस्कृति की सुन्दर झलक इस मेले में मिलती है।

ऊधमपुर से पश्चिम की ओर चार मील की दूरी पर किरमची नाम के ग्राम में पांच मन्दिरों के समूह के अवशेष मिलते हैं। ये मन्दिर भारतीय-आर्य शिखर शैली के हैं। केदारनाथ शास्त्री के अनुसार ये भुवनेश्वर के लिङ्गराज मन्दिर का स्मरण कराते हैं।

जम्मू में पूर्वदिशा की ओर 64 किलोमीटर की दूरी पर बबौर में प्राचीन मन्दिरों के खण्डहर इस स्थान की प्राचीनता को सिद्ध करते हैं। कल्हण की राजतरंगिणी में बबौर का उल्लेख बब्बापुर के रूप में हुआ है। कीर्ति र्बब्बापुराधीशः (राज VII 587-90) फैड्रिक ड्रियू ने 1870 ई. में इस स्थान की यात्रा की थी। श्री सूरज सराफ़ का अनुमान है कि यहां तेरह मन्दिर थे। छः मन्दिरों के अवशेष अभी भी पहचाने जाते हैं। दो प्रमुख मन्दिर हैं-हरिहर मन्दिर और

देवीमन्दिर। दोनों मन्दिरों का समय दशम शताब्दी ई. से बारहवीं शताब्दी ई. का प्रतीत होता है। कश्मीर के राजाओं कलश, सुस्सल और हर्ष के साथ बबौर के राजाओं का सम्बन्ध रहा था और इन का समय ग्यारहवीं और बारहवीं शती का है। राजा कलश का एक सिक्का भी यहां से प्राप्त हुआ है। देवी मन्दिर की प्रत्येक भुजा साढ़े छः मीटर है तथा हरिहर मन्दिर का घेरा सोलह मीटर है। देवी मन्दिर के द्वार पर दायीं ओर मकर पर सवार गंगा की मुकुट धारिणी त्रिभंग मूर्ति अत्यन्त सुन्दर है। गणेश, भैरों तथा विष्णु-लक्ष्मी की मूर्तियां भी यहां से मिली हैं। मुकुटधारी गणेश की सूंड मिठाई के थाल में रखी है और दायें हाथ में कुल्हाड़ी है। उदर धोती से ढका हुआ है। भैरों की मूर्ति चतुर्भुज है। विष्णु-लक्ष्मी की मूर्ति में विष्णु के एक हाथ में कमल है दूसरे हाथ से लक्ष्मी का हाथ पकड़ा है।

हरिहर मन्दिर में गणेश की मूर्ति का दायां भाग नष्ट हो चुका है। उदर नग्न है। कन्धे पर वस्त्र है। सूंड से मिठाई खा रहे हैं। शंखाकृति का कर्णाभूषण भी बायीं ओर के कान से लटक रहा है। पैरों में कड़े पहने हैं। गरुड़ की मूर्ति में मनुष्य तथा पक्षी की विशेषताओं का मिश्रण है। दो स्तम्भों के शीर्ष मनुष्याकृति के हैं। एक अर्धप्रतिमा के चार शिर हैं। इसे चतुर्मुख ब्रह्मा की मूर्ति माना जा सकता है।

बबौर के मन्दिरों के शिखर सीढ़ी नुमा हैं। इस शैली के मन्दिर डुग्गर प्रदेश में और कहीं नहीं मिलते। यह शैली कश्मीर की वास्तुकला से भी भिन्न है तथा प्रतिहार राजाओं के द्वारा उत्तर भारत में बनवाये गये मन्दिरों से मेल खाती है।

बिलावर का हरिहर मन्दिर भी बड़ा प्रसिद्ध है। चौकोर गर्भगृह पर शिखर शैली की छत है। बिलावर के निकट ही गुरनाल गांव में विन्ध्यवासिनी देवी का मन्दिर है, सुकराला में मल्ला देवी का मन्दिर है।

जम्मू को मन्दिरों का शहर कहा जाता है। प्रसिद्ध रघुनाथ मन्दिर तो मन्दिरों का समूह है जिसे डोगरा राजाओं ने डेढ़ सौ वर्ष पूर्व बनवाया था। मुख्य गर्भगृह में काले पत्थर से बनी रामचन्द्र तथा सफेद संगमर्मर से बनी सीता और लक्ष्मण की मूर्तियां हैं। परिक्रमा के मन्दिरों में लक्ष्मीनारायण विष्णु, भरत, शत्रुघ्न तथा

विष्णु के अवतारों की मूर्तियां हैं। एक मन्दिर में सप्त देवियां हैं। गर्भगृह की बाहरी परिक्रमा में कई देवीदेवताओं की मूर्तियां और रामायण तथा महाभारत के कई दृश्य मूर्तियों के माध्यम से दिखाये गये हैं। कई लाख शालिग्राम पिण्डियां हैं। गर्भगृह के सामने हनुमान् की मूर्ति तथा वाल्मीकि का चित्र है। बाहरी आंगन में एक ओर शिवमन्दिर में विशाल शिवलिङ्ग है दूसरी ओर राजाओं की समाधियां हैं। कुछ वर्ष पूर्व बनवाया गया नटराज मन्दिर भी है।

जम्मू नगर के अन्य प्रसिद्ध मन्दिर हैं-पीरखोह का शिव मन्दिर, रण-वीरेश्वर शिवमन्दिर, पञ्चवक्त्र शिवमन्दिर, पुरानीमण्डी का मन्दिर तथा बाहुदुर्ग का काली मन्दिर।

०००

जम्मू कश्मीर की धरती : धार्मिक सांस्कृतिक समन्वय

भारतीय संस्कृति का ताना बाना जिन बहुरंगी सूत्रों से बुना गया है उनका निर्माण कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक, द्वारिका से लेकर कामरूप तक फैले हुए भारत के विभिन्न प्रदेशों में हुआ है। बौद्ध, जैन, हिन्दु, मुस्लिम, सिख, ईसाई सभी ने इस संस्कृति के विकास में योगदान दिया है। भारतीय संस्कृति के अथाह और विशाल सागर में अनेक धार्मिक सांस्कृतिक धाराएं आ मिली हैं और यह पहचान करना भी कठिन है कि कौन सा विश्वास या चिन्तन बिन्दु मूल रूप में किस संस्कृति का भाग था। वैदिक संस्कृति और प्राग्वैदिक काल से चली आ रही अन्य भिन्न भिन्न सांस्कृतिक धाराएं सब पुराणों में घुल मिल कर एक हो गई हैं। अमरकोशकार ने यक्ष, पिशाच, विद्याधर, गन्धर्व, किन्नर, गायक आदि अवैदिक जातियों को देवयोनियां कहा है। पुराणों में महात्मा बुद्ध को विष्णु का अवतार मान लिया गया है और बौद्ध जैन ग्रन्थों में हिन्दु देवी देवताओं को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। राम जातक के राम बोधिसत्त्व हो गये हैं। वैदिक युग के वीर इन्द्र बौद्ध धर्म में अहिंसावादी हो गये हैं। इसी अहिंसा के प्रभाव से सूफी मुसलमानों ने मांस खाना छोड़ दिया। हिन्दु मठों के अनुकरण पर शेखों पीरों की गद्दियां चल पड़ीं। बुतपरस्ती के विरोधियों ने भी पीरों की पूजा शुरु कर दी और उनके दर पर सिजदा करने में गौरव माना। यह समन्वय की संस्कृति पूरे भारत की विशेषता है पर जम्मू कश्मीर की धरती इस सांस्कृतिक एकता का आदर्श नमूना रही है। उन्नीस सौ सैंतालीस में भारत पाक विभाजन के समय जब पूरा देश साम्प्रदायिक दंगों की आग में जल रहा था, गांधी जी को जम्मूकश्मीर में आशा की किरण दिखाई दी थी। भारत पाक युद्धों में जम्मू कश्मीर की जनता ने एक जुट होकर देश की रक्षा के लिए संकल्प लिया था-धर्म सम्प्रदाय जाति इन सब भेद भावों से ऊपर उठ कर। जम्मू कश्मीर के लोगों ने दो नेशन के उस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया जिस के अनुसार एक राष्ट्र में हिन्दु मुसलमान इकट्ठे नहीं रह सकते थे। एक

धर्म एक राष्ट्र का सिद्धांत ठीक होता तो पूर्वी पाकिस्तान, पश्चिमी पाकिस्तान से अलग न होता। कश्मीर की जनता ने तो कश्मीर की भूमि को सती माना है और सतीस्वरूप देश की सुरक्षा और समृद्धि के लिए कृतसंकल्प रही है।

हज़ारों सालों से यहां के धार्मिक और सांस्कृतिक समन्वय की गवाही वितस्ता की लहरें दे रही हैं। लगभग चार हज़ार वर्षों का प्रामाणिक इतिहास जो राजतरंगिणियों में सुरक्षित है, शैव, वैष्णव, नाग, पिशाच, गुह्यक, भोट, शिया, सुन्नी, सैय्यद, चक, मुग़ल, पठान सभी की मिली जुली कहानी है।

कश्मीर के नीलमत पुराण में शैव और वैष्णव धर्म का समन्वय शिव और विष्णु की मित्रता तथा पार्वती और लक्ष्मी के प्रेमभाव के रूप में प्रस्तुत हुआ है। नाग पूजा प्रसंग में नाग हिन्दु धर्म के अंग बने हैं और हिन्दु धर्म के देवता रुद्र, हर, शम्भु, वासुदेव, नारायण, प्रद्युम्न, गोपाल, राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, इन्द्र, जयन्त, अर्जुन, युधिष्ठिर ये सब नागों के रूप में आये हैं। बौद्ध धर्म के प्रति जैसा उदार दृष्टिकोण कश्मीर के इस पुराण में मिलता है वैसा और किसी पुराण में नहीं मिलता। बुद्ध के जन्मदिन पर बुद्ध की मूर्ति की पूजा का, बौद्धों के निवासस्थानों पर सफेदी कराने का, चैत्यों को चित्रांकित करने का तथा बौद्धभिक्षुओं को वस्त्र, भोजन, पुस्तकें आदि देने का विधान नीलमतपुराण में मिलता है जो सिद्ध करता है कि तत्कालीन कश्मीर के हिन्दु धर्मानुयायी बुद्ध के जन्मोत्सव को बड़े उत्साह से मनाते थे। अशोक और कनिष्क के नाम कश्मीर से जुड़े हैं जिन्होंने धार्मिक समन्वय का अनुपम उदाहरण उपस्थित किया था। चौदहवीं शताब्दी तक कश्मीर में हिन्दु तथा बौद्ध साथ साथ रहे। कोई क्रान्ति कोई बड़ा संघर्ष कभी नही हुआ। इस्लाम के आगमन पर पुरानी संस्कृति को धक्का लगा। देव मूर्तियां भग्न हुईं, मन्दिर, मठ, विहार भस्मसात् हुए।

विशाल स्तर पर धर्म परिवर्तन हुआ। ब्राह्मण मुसलमान बने। नाम बदल गये पर माता पिता और पूर्वज तो नहीं बदल सकते थे। कश्मीर के मुसलमानों ने अपनी जातियां और गोत्र भी नहीं बदले।

हिन्दु धर्म और इस्लाम के समन्वय से रिशी वाद का जन्म हुआ। खानकाहों और आस्तानों की इबादत शुरु हुई। उत्तरी भारत की भक्ति लहर के साथ साथ कश्मीर में सूफी वाद की लहर चली। शेख नूरुद्दीन ने शास्त्र

श्लोक लिख कर कश्मीरी मानवतावाद की शुरुआत की। लल्लेश्वरी और शेख नूरुद्दीन की सूक्तियां इतनी मिलती जुलती हैं कि पारस्परिक प्रभाव साफ दिखाई देता है। कश्मीर शैव दर्शन का प्रभाव कश्मीर के हिन्दुओं मुसलमानों दोनों पर है। शमस फकीर शाह, गफूर शाह कलन्दर आदि की रचनाएं वेदान्त के सिद्धान्तों से प्रभावित हैं। कश्मीर की धरती पर ऐसे अनेक मुसलमान सूफी हुए जिन्हें हिन्दुओं ने जी भर कर सम्मान दिया। मुस्लिम सूफियों के शिष्यों में कृष्ण पीर, जिन्द पीर जैसे कई कश्मीरी ब्राह्मणों के नाम प्रसिद्ध हैं। आज भी रिशी मूल की मजार पर कोई मुस्लिम या हिन्दु मांस खा कर नहीं जाता और रिशी के उर्स पर हिन्दु मुसलमान दोनों शाकाहारी हो जाते हैं।

कश्मीरी पीरपरस्त कहे जाते हैं। रिशी बाबा, मकदूम साहब पीरज़ादा आदि के पूजा स्थान हिन्दुओं के मन्दिरों की तरह पूजे जाते हैं। हरिपर्वत पर शेख मकदूम साहब की मज़ार है, वहीं पास में शारिका देवी का मन्दिर है। इस नाते हिन्दुओं मुसलमानों सभी के लिए हरिपर्वत पूज्य है। वैरीनाग के पास फतेहपुरा में पैर का निशान है जिसे मुसलमान कदमे रसूल और हिन्दू विष्णुपाद मान कर पूजते हैं। शाह हमदान का पवित्र आस्तान हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के लिए तीर्थ है। अमरनाथ गुहा में चढ़ी भेंट ब्राह्मण और मुस्लिम पीर मिल कर बांटते हैं। खीर भवानी को हिन्दुओं के साथ साथ मुसलमान भी आदर भाव से देखते हैं। लेह-लद्दाख में बौद्धों और मुसलमानों में इतना सामीप्य है कि विवाह सम्बन्ध भी कर लिए जाते हैं। जम्मू प्रदेश में वैष्णो देवी की गुफा की यात्रा हिन्दु, सिक्ख, मुसलमान सभी करते हैं। ऐतिहासिक तथ्य चाहे कुछ कहे पर माता वैष्णों के भक्त बादशाह अकबर की वैष्णो देवी की यात्रा का वर्णन प्रेम पूर्वक भक्ति गीतों में गाते हैं।

जम्मू मन्दिरों की नगरी है जहां डोगरा राजाओं के द्वारा बनवाये गये प्रसिद्ध मन्दिर रघुनाथ मन्दिर, रणवीरेश्वर मन्दिर, गदाधर मन्दिर, पञ्चवक्त्र मन्दिर आदि हैं। जम्मू के हिन्दू जहां इन मन्दिरों में जा कर देवी देवताओं की पूजा करते हैं वहां पीरों की दरगाहों पर भी फूल चावल, तेल आदि चढ़ाने पहुंचते हैं और सिद्धों योगियों की तरह ही पीरों को पूजते हैं।

जम्मू की प्रसिद्ध गुमट ढक्की के ऊपर पीर रोशनशाह वली का मकबरा है। दिसम्बर के तीसरे सप्ताह में उर्स होता है जिस में हिन्दु, मुसलमान, ईसाई

सिक्ख सभी शामिल होकर दिये जलाते हैं तथा मीठा शरबत भेंट करते हैं। राजा सर्पल धर के समय में बनी इस मज़ार की मरम्मत महाराजा रणवीरसिंह ने धर्मार्थ ट्रस्ट के निरीक्षण में करवाई थी।

राजा अजब के समकालीन पीर मिट्ठा की दरगाह जिस बाज़ार में है उसे पीर मिट्ठा का नाम दे दिया गया है। कहा जाता है कि वह गुरु गोरखनाथ के शिष्य पीरखोह के गरीबनाथ योगी के समकालीन और मित्र थे। हर वीरवार को हिन्दु मुसलमान वहां तेल आटा फूल चढ़ाते हैं।

जम्मू विमानपत्तन के पास बाबा बुड्डनशाह की दरगाह भी हिन्दुओं मुसलमानों के द्वारा पूजी जाती है। कहा जाता है कि गुरु गोविन्द सिंह भी वहां आए थे। गांधी मेमोरियल कालेज की भूमि में पीर जाहिरवली शाह की मज़ार, गांधीनगर में बाबा राह की मज़ार, जुलाहका मुहल्ला में पीर मोहब्बत अली शाह की मज़ार, लखदाता बाज़ार में पीर लखदाता का स्थान, पंजतीर्थी में पंजपीर इन सब स्थानों पर धार्मिक और सांस्कृतिक समन्वय के दर्शन होते हैं। साम्बे में गरीब शाह की मज़ार, कठुए में पीर फाज़िल शाह की मज़ार की मान्यता है। भद्रवाह किश्तवाड़ में शाह फरीदुद्दीन, शाह असीरूद्दीन तथा शेख जैनुद्दीन अली की मज़ारें हैं।

पीरों सिद्धों योगियों के साथ-साथ इस धरती के वीर बलिदानियों की भी पूजा सभी लोग मिल जुल कर करते हैं। ग्हार और काने चक में बाबा जित्तो की स्मृति में उत्सव मनाये जाते हैं। उस ब्राह्मण किसान ने आत्मबलिदान कर सत्ता में उन्मत्त हुए जागीरदार का मुकाबला किया था। हज़ारों हिन्दु सिख तथा अन्य जातियों के लोग कार्तिक पूर्णिमा को वहां पहुंच कर श्रद्धा के फूल चढ़ाते हैं। मुट्ठी का दाता लीखो, आकलपुर का दाता सुक्खो, मढ़ के दाता भीखों तथा दाता हल्लो, तथा मियां धनिया, रियासी के बन्दा वैरागी, बटैह्रे के वीर रामचन्द्र आदि कई बलिदानी जनता के द्वारा श्रद्धा से स्मरण किये जाते हैं।

जम्मू कश्मीर की यह धरती हज़ारों वर्षों से अपनी इस सांस्कृतिक निधि को संजोए राष्ट्रिय एकता का दिया जलाए हुए है। विघटनकारी तत्त्व कभी-कभी इसे बुझाने की ठानते हैं परन्तु जनता के हृदयों में पल रहा सौहार्द और स्नेह इसे कभी भी बुझने नहीं दे सकता।

ooo

बदलते देश का स्वर

भारत में स्वतन्त्रता की मांग उठने पर सन् 1930-31 में विन्स्टन चर्चिल ने कहा था कि "यदि हमने भारत को आज़ादी दे दी तो यह देश बड़ी तेज़ी से पीछे लुढ़क कर मध्ययुग के बहशीपन और गुरबत में जा गिरेगा।" चर्चिल की यह भविष्यवाणी देश का बंटवारा होने पर कुछ समय के लिए चाहे ठीक प्रतीत हुई जब लाखों लोगों ने बेघर हो कर मौत और लूटपाट का ताण्डव देखा था पर उस के पश्चात् छः दशकों से भारत में लोकतान्त्रिक व्यवस्था चल रही है और यह देश विश्व के सब से बड़े लोकतन्त्र के रूप में उभरा है। हर पांच साल बाद देश की बागडोर किन हाथों में दी जाए इस का फैसला आम भारतीय ही करते रहे हैं। चुनावों में धन और बल का दुरुपयोग कैसे रोका जाए इस पर भी जनता की मांग निरन्तर उठ रही है। भारत की सामान्य अनपढ़ जनता में भी राजनैतिक सामाजिक चेतना है यह हमारे चुनाव परिणाम साबित करते हैं।

कई दशक पूर्व विश्व के एक सौ पैंतीस देशों में शिक्षा, विकास और लोकतन्त्र के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन कर के भारत में लोकतन्त्र के शीघ्र अन्त होने की आशंका पाश्चात्य समाजशास्त्रियों ने प्रकट की थी। अपना भारत एक विलक्षण देश है जिसने पिछले त्रेसठ वर्षों में उस आशंका को भी निर्मूल साबित कर दिखाया है। इस देश में अनेक धर्मों को मानने वाले, अनेक बोलियों, भाषाओं को बोलने वाले, भिन्न-भिन्न रीति रिवाज़ों के अनुसार चलने वाले एक अरब से ऊपर लोग रहते हैं। अधिकांश प्रदेशों का गठन भाषाई आधार पर ही हुआ है अतः वहां प्रादेशिक भाषाएँ फल फूल रही हैं। प्रादेशिक पहचान के साथ साथ हर व्यक्ति की पहचान भारतीय के रूप में है। कश्मीरी, डोगरा, पंजाबी, मराठा, गुजराती, कन्नड़, तमिल होते हुए भी वह भारतीय है। एकता का यह स्वर कभी खण्डित न हो यही हम सब का संकल्प होना चाहिए।

सूचना तकनीक के क्षेत्र में भारत विश्व की बहुत बड़ी शक्ति है। भारतीय साफ्टवेयर इंजीनियरों की मांग विश्व भर में निरन्तर बढ़ रही है। विश्व की सब से बड़ी पांच सौ कम्पनियों के शाखा कार्यालय भारत में है जहां हमारे लाखों युवक युवतियां साफ्टवेयर इंजिनियर अनेक देशों के विभिन्न काम जैसे हिसाब किताब, टिकट बुकिंग, विधिमन्त्रणा, गुमशुदा सामान की खोज, चर्च या मन्दिर में प्रार्थना सभी तरह के काम कर रहे हैं। इस लम्बी कतार में भारत का उच्चवर्ग ही नहीं अधिकतर मध्यमवर्ग और अब निम्न वर्ग भी शामिल हो रहा है। जब सूचना मिलती है कि बिहार के पटवाटोली गांव के अनपढ़ बुनकरों के तेइस युवकों ने आई.आई.टी. में इंजिनियरी कर के उच्च पद प्राप्त कर लिए हैं या दिल्ली के किंग्सवे कैम्प की झुग्गी नं. 208 के दिहाड़ी मजदूर का बेटा हरिचन्द्र आइ.ए.एस. की परीक्षा उत्तीर्ण कर आफिसर बन गया है तो लगता है कि जन्म और पुश्तैनी कर्म के आधार पर बनी दीवारें ढह रही हैं। विकास का यह स्वर मुखरित हो रहा है। भारत विश्व की चौथी सब से बड़ी अर्थव्यवस्था का धारक है और अब हमारी मुद्रा रुपया अपनी विशिष्ट पहचान लेकर पांच अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राओं में शामिल होने जा रही है। महिलाओं की शिक्षा का दर भी बढ़ा है। पंचायतों में महिला आरक्षण के पश्चात् गांव की पंच सरपंच बनी महिलाएं धीरे-धीरे गांव के विकास में योगदान कर रही हैं। यह सुखद परिवर्तन है पर इसी के साथ यह भी नकारा नहीं जा सकता कि अभी भी दलितों और महिलाओं पर अत्याचार होते हैं। लाखों बच्चियों की भ्रूणहत्या हो रही है। दहेज के द्वारा उत्पीड़न, हत्याएं और आत्महत्याएं, बलात्कार और यौन शोषण की खबरें आये दिन सुनाई पड़ती हैं।

वैश्वीकरण और मुक्तबाज़ार ने जहां कतिपय भारतीयों के जीवन स्तर को उन्नत किया है वहां बहुत से भारतीयों के विशेषत: ग्रामीण अंचलों और वनवासी क्षेत्रों के लोगों के जीवन स्तर को गिराया है और उन्हें अभाव और भुखमरी के कगार पर ला दिया है। यह दुखद सच्चाई है कि गांवों में कृषि को समुचित साधन न मिलने से गांव का व्यक्ति शहरों की ओर भाग रहा है और शहरों की झुग्गी झोपड़ी बस्तियाँ कुल आबादी से ढाई गुना तेजी से बढ़ रही हैं। झोपड़ पट्टी के लोग भवन निर्माण करते हैं जिन में रहना उन के लिए सपना है, वे उन कपड़ों की धुलाई प्रैस करते हैं जो उन्हें नसीब नहीं होते,

वे समाचार पत्र बांटते हैं पर स्वयं उसे पढ़ नहीं पाते, कारों को धोते हैं जो कभी उन की नहीं हो सकतीं। देश के पच्चीस करोड़ लोग रात को भूखे पेट सोते हैं। पांच साल तक की उमर के बहुत से बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। ये सब निराशा वेदना और अवसाद के स्वर हैं जिन्हें बदलने की तुरन्त आवश्यकता है। यह तभी होगा जब जनता जागरूक होगी, जब राजनेता अपनी सत्ता को बचाने के लिए सौदों और समझौतों की राजनीति नहीं करेंगे, अपनी तिजोरियां भरने के स्थान पर आम आदमी की समस्याओं का हल सोचेंगे, जब उच्चस्तर के सचिव और पदाधिकारी रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार से दूर रहेंगे, जब वे मानवीय मूल्यों और मान्यताओं को ध्यान में रखकर अपने विवेक से काम करेंगे, मन्त्रियों, मुख्यमन्त्रियों के भाई भतीजों के आदेशों पर नहीं। ग्रामों के विकास के लिए जो योजनाएं बन रही हैं उन के क्रियान्वयन में पूरी ईमानदारी और पारदर्शिता बरतने की जरूरत है। गांधी जी के सर्वोदय और विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त को नये सिरे से समझने और अपनाने की जरूरत है। अन्यथा अमीरी और गरीबी के बीच बढ़ती हुए खाई हमें हिंसक संघर्षों में धकेल देगी।

ooo

पर्यावरण संरक्षण और महिलायें

किसी भी देश के विकास की कोई भी योजना तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक पूरी जनता उसे कार्यान्वित करने में पूरा सहयोग नहीं देती। जनता का प्रमुख भाग पचास प्रतिशत या उस से भी अधिक महिला जगत् है जिस की भागीदारी के बिना सफलता की कल्पना नहीं की जा सकती।

प्रकृति के साथ महिलाओं का स्वाभाविक स्नेह सम्बन्ध हमारे प्राचीन भारतीय साहित्य का विशेष विषय रहा है। रामायण की सीता का वन के वृक्षों, पौधों, लताओं से अद्भुत प्रेम सम्बन्ध रामायण में वर्णित है। कालिदास की शकुन्तला तो प्रकृतिकन्या है जो वृक्षों लताओं को सगी बहनों और सगे भाइयों से बढ़ कर प्यार देती है, जो वृक्षों को जल सींचे बिना स्वयं पानी भी नहीं पीती। वृक्षों के प्रथम पुष्प दिखाई पड़ने पर उत्सव मनाती है और आभूषणप्रिया होने पर भी फूलों को तोड़ती नहीं। वन के मृगशावक उस की गोदी में खेलते हैं जिन के पैरों में कांटे चुभ जाने पर वह इङ्गुदी का तेल लगाती है। आज भी भारतीय महिलायें प्रातः उठ कर तुलसी और पीपल को जल देने में पुण्य लाभ समझती हैं। अतः यह आवश्यक है कि पर्यावरण संरक्षण के विषय में महिलाओं को पूरी जानकारी दी जाए और इस क्षेत्र में उनका सहयोग लिया जाए। आज से तीन सौ वर्ष पूर्व खेजली जोधपुर में 1730 में अमृतादेवी के नेतृत्व में 363 विश्नोइयों ने वृक्षों की रक्षा के लिए अपना बलिदान दिया था। भारत के चिपको आन्दोलन में महिलाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। आवश्यकता है इस विषय में महिलाओं को जागृत कर उन का पूर्ण सहयोग लिया जाए। संक्षेप में कुछ सुझाव इस प्रकार हैं-

(1) निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या पर्यावरण प्रदूषण का मुख्य कारण है। जितनी जनसंख्या बढ़ती है, प्रति व्यक्ति उतनी ही धरती घटती जाती है। खेती

के लिए वृक्ष कटते हैं तो भूक्षरण होता है, रेतीकरण होता है और चारों ओर रेगिस्तान बढ़ता जाता है। बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ फैक्टरियों, बसों, मोटरों आदि का काला धूंआ भी उतनी ही मात्रा में बढ़ता जाता हुआ मानव जाति के लिए भयंकर रोग लाता है। बढ़ती हुई आबादी की रोक में महिलायें ही सर्वाधिक योगदान कर सकती हैं। मानवजाति उन्हीं की सन्तान है और अपनी सन्तान के समक्ष खड़ी भूख, बीमारी और गरीबी की चुनौतियों का समाधान भी उन्हें ही खोजना है।

(2) व्यापारिक वानिकी के खिलाफ़ बगावत का झण्डा खड़ा करने में महिलाओं को आगे आना चाहिए। वन वृक्षों को कच्चा माल मान कर उन्हें निरन्तर काट कर तिजोरियां भरने वाले धरती मां के घावों की पीड़ा नहीं समझते। महिलाओं को यह आन्दोलन शुरु करना चाहिए कि दस पेड़ लगाने पर ही एक पेड़ काटने दिया जाएगा।

(3) इन्धन के लिए कम से कम लकड़ी का प्रयोग हो इस के लिए धूमरहित चूल्हों का और ज़्यादा प्रचार होना चाहिए। सौर चूल्हे पर सरकार अधिक से अधिक अनुदान देकर उसे सस्ते मूल्य पर ग्रामीण महिलाओं को उपलब्ध कराये।

(4) धरती में खाद न बन सकने वाला कूड़ा करकट आज पर्यावरण प्रदूषण का प्रमुख कारण बन रहा है। सदियों सदियों तक धरती में पड़ा रहने पर भी प्लास्टिक, पोलीथीन के लिफाफे, डब्बे तथा अन्य सामान धरती का अंग नहीं बनता। उसकी उर्वरता को नष्ट करता है अतः इस प्रकार के सामान को खुला मत फैंकें। उनका प्रयोग कम से कम करें तथा प्रयोग के बाद कबाड़ियों के माध्यम से उन्हें दुबारा प्रयोग के लिए फैक्टरियों तक पहुंचाएं। पत्तों के दोनें पत्तलें धरती को घाव नहीं मरहम देते हैं अतः उनके प्रयोग को बढ़ावा दें।

(5) झरने, नदियां, सरोवर और तालाब हमें पीने का पानी देते हैं। विश्व में कुल पानी का केवल दो प्रतिशत पानी पीने लायक है शेष 98% पेय नहीं। अतः इस पेय जल की सुरक्षा हमारा प्रथम कर्तव्य है। इसके लिए यह ध्यान

रखें कि–

(क) पीने का पानी व्यर्थ न बहे।

(ख) तालाबों, सरोवरों के पास कूड़ा करकट न फैंकें।

(ग) गन्दे नाले नालियों का पानी नदियों में न डालें।

(घ) साबुन वाले धुलाई वाले कपड़े पीने वाले पानी अर्थात् सरोवर, तालाब में न डालें। अलग स्थान पर धोयें।

(ङ) पशुओं के नहाने का तालाब अलग रखें।

(च) तालाबों, सरोवरों, नदियों के निकट की भूमि पर पेड़ लगाएं ताकि पानी साफ हो कर तालाब, सरोवर, नदी में पहुंचे। जम्मूप्रदेश में मानसर, सरूईंसर के विशेष संरक्षण की आवश्यकता है।

(छ) झोपड़पट्टी क्षेत्रों में सुलभ शौचालयों की व्यवस्था की जाए तथा शुद्ध पेयजल की व्यवस्था की जाए। महिलायें इस विषय में जागरूकता उत्पन्न कर राज्यसरकारों को यह सुविधायें प्रदान करने को बाध्य करें।

(6) बच्चों, भाइयों तथा परिवार के सभी सदस्यों को तम्बाकू के प्रयोग से बचाएं।

इस प्रकार के उपाय अपना कर महिलायें पर्यावरण संरक्षण में महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकती हैं।

ooo

संस्कृत साहित्य में पंजाब वर्णन

ऋग्वेद काल से लेकर आधुनिक काल तक अब पंजाब नाम से प्रसिद्ध इस भूमि का उल्लेख संस्कृत ग्रन्थों में होता रहा है। ऋग्वेद के प्रसिद्ध नदी सूक्त में जिन नदियों की स्तुति की गई है उन में सिन्धु, शुतुद्री, वितस्ता, विपाशा, असिक्नी, परुष्णी हैं। सिन्धु की पहचान सिन्ध नदी से, शुतुद्री की सतलुज से, विपाशा की व्यास नदी से असिक्नी की चनाब से तथा परुष्णी की रावी से की गई है। भारत के विभाजन से पूर्व ये नदियां पंजाब प्रदेश से होकर बहती थीं। अब वितस्ता (जेहलम) सिन्धु (सिन्ध) तथा असिक्नी (चनाब) जम्मूकश्मीर प्रदेश से पाकिस्तान अन्तर्गत पश्चिमी पंजाब में जाती हैं।

प्राचीन साहित्य में पंजाब के कई नाम वाहीक, आरट्ट, पंचनद मिलते हैं। केकय प्रदेश भी पंजाब का अंग था। व्यास नदी से लेकर गांधार तक का प्रदेश केकय प्रदेश कहा जाता था। महाभारत के आदिपर्व में चार मद्रों का उल्लेख है। दक्षिण मद्र और पूर्वमद्र की पहचान पंजाब की भूमि से की जाती है। सियालकोट पूर्वमद्र का प्रसिद्ध नगर था। महाभारत के कर्णपर्व में कहा है कि वाहीक पांच नदियों और छठी सिन्धु नदी के बीच का प्रदेश है। वहां वाहीकों को धर्मबाह्य आचरण करने वाले कहा है।

छान्दोग्योपनिषद् (५.११.४) तथा शतपथ ब्राह्मण में (१०.६.१.२) केकय प्रदेश के राजा अश्वपति का वर्णन है। उस ने बड़े आत्मविश्वास से कहा है कि मेरे जनपद में न कोई चोर है न कंजूस न कोई शराबी है न कोई यज्ञ न करने वाला है, न कोई मूर्ख है न कोई स्वच्छन्द उच्छृंखल पुरुष है और न उच्छृंखल स्त्री–

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।।

व्यास नदी से लेकर पश्चिम में गांधार तक का प्रदेश केकय प्रदेश कहा गया है। भरत की माता कैकेयी इसी प्रदेश की बेटी थी। उसने युद्ध क्षेत्र में दशरथ की सहायता करने के परिणाम स्वरूप दो वर प्राप्त किये थे। यहां स्त्रीपुरुषों की वीरता प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध रही है। सिकन्दर की सेनाओं को पंजाब के वीरों के डर से ही वापिस लौटना पड़ा था।

इस वीर भूमि की सीमाएं धीरे धीरे सिकुड़ती गई हैं। भारत विभाजन के पश्चात् १९६२ में प्रकाशित आधुनिक कवि शिवप्रसाद भारद्वाज की कृति भारतसन्देश: में पंजाब अर्थात् भारतान्तर्गत पूर्वी पंजाब के चार प्रमुख नगरों चण्डीगढ़, लुधियाना, जालंधर और अमृतसर का वर्णन हुआ है। विश्वशान्ति के सन्देश को सुनने आए विभिन्न देशों के राजदूत भारत भ्रमण की इच्छा प्रकट करते हैं। काव्य के पूर्व भाग में भारतदर्शनम् शीर्षक से भारत के प्रसिद्ध नगरों स्थानों का वर्णन है तथा दूसरे भाग में भारत के राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद का सन्देश है।

चण्डीगढ़ के विषय में कवि कहता है कि भारत विभाजन के पश्चात् पंजाब की नयी राजधानी के रूप में यह नयी नगरी शिवालक पहाड़ियों के चरणों में बड़े बुद्धि कौशल से निर्मित की गई है। इसी के पास गोबिन्दसागर बनाया गया है जिस से उत्पन्न बिजली ने इस भूमि को समृद्धि प्रदान की है। सतलुज व्यास नदियों की महत्ता का वर्णन करते हुए कवि की उक्ति है कि इन नदियों ने अपने जलों से इस धरती को सोना उगलने वाली बनाया है। लुधियाना नगर के उद्योग शिल्प बाहुल्य का और जालंधर के प्रसिद्ध नगर का उल्लेख कर कवि अमृतसर के स्वर्णमन्दिर, दुर्ग्याणा मन्दिर और भारत के स्वतन्त्रता संघर्ष के स्मारक जलियां वाले बाग का वर्णन करता है-

पञ्चापस्य प्रथममपरं वास्तुसार-प्रगाथं
नाम्ना चण्डीगढ इति पुरं तच्च शैवालकाङ्घ्रौ।
द्वैतं नीते कुटिलमतिभिर्भारते राजधानी
राज्यस्येयं नवपरिकृति बुद्धिसारव्ययेन।। १, ११६

दूरे नेतो भवति शिखरिश्रेणिरस्यां पुराणी
ह्येते प्रावृणनदीपरिगतानूपमध्यास्त्रिगर्ता:।
गोबिन्दाख्योऽपर इह कृत: सागरो यत्प्रसूता
विद्युद्वाऽऽप: क्षितिमतिजवा रत्नगर्भां विधातुम्।। ११७

तप्ते तापैस्तपसि तपनाऽभीशु-वृष्टैस्तलेऽस्मिन्
यस्यां खेदं विजहति जनाश्छन्दसौम्यैर्विहारैः।
रम्याऽऽगारा भवति शिमला नाम पूस्तत्र शृङ्गे
रिङ्गद् भृङ्गी-रुत-मधु-लता-वृक्ष-षण्डे महाऽद्रेः॥ ११८

ब्रह्माऽऽवर्तो जनपद इह प्राक्तनो यस्य सीमा-
तीरं सारस्वतमथ दृषद्वत्यसावापतन्ती।
अग्रे चैषा तरलसलिला प्रेक्ष्यमाणा विपाशा
स्वैरम्भोभिः कनक-सवनीं कल्पयत्यञ्जसोर्वीम्।। १२१

कृत्यव्यग्रोदित-कलकल-ज्ञापितोदग्रमान-
क्रान्तं शिल्प-प्रकट-विभवं लुब्धयानं पुरं तत्।
प्रेक्ष्यं चाग्रे नगरमपरं लक्ष्यपञ्चाम्बुशीलं
ज्ञातं जालन्धर इति सदोद्युक्तलोक-प्रघुष्टम्॥ १२२

ख्यातं नाम्नाऽमृतसर इदं पत्तनं यत्र नाना-
भूषावेशा बहुजनपदा नित्यमायान्ति लोकाः।
पाकस्थानं यति लवपुरे ऽदोऽभवद् रिक्तसम्पद्।
ऋद्धिः सर्वाऽऽगमदिह तया भारतं भारतं यत्।। १२३

अत्राऽऽमन्दं मदयति जनान्मन्दिरं स्वर्णसंज्ञं
यस्याऽऽदर्शोऽमृतसर उदारेन्दिरं स्वच्छनीरम्।
आहोरात्रं मुरज-निनदैर्मन्त्रयत्येव लोकान्
सत्यं नाम स्मरत विशत द्वारमेतद् गुरूणाम्।। १२४

पार्श्वे चाऽस्य प्रहतपटहै र्घोषयद् द्वन्दभावं
भव्यं दुर्गायतनममले वारिणि प्रोतबिम्बम्।
भक्तान् भक्त्या ध्वनिषु रसिकान् नादसौख्यै रसज्ञान्
रागोद्रेकै रमयति जनान् यत्र संगीतमिष्टम्।। १२४

आरामोऽसावथ च जलियां संज्ञकोऽत्रैव यस्मिन्
मातुर्हर्तुं निगडकलनामुत्सुका भारतीयाः।
आङ्गलैश्वर्य-द्रढन-मतिना रंहसा डायरेण
शस्त्रा भ्रष्टा अविरल-चलद्यन्त्रनालीकवर्षैः।। १२६

०००

भारत का स्वतन्त्रता संग्राम—एक वैचारिक चिन्तन

ई० सन् 1600 में भारत भूमि में व्यापार की दृष्टि से आई लन्दन के व्यापारियों की एक कम्पनी इस धरती को धीरे-धीरे पराधीनता की जंजीरों में जकड़ लेगी, यह कोई जानता नहीं था। ईस्ट इण्डिया नाम की छोटी सी संस्था भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें जमाने में सफल हो जाएगी इस का आभास भी भारत की जनता को नहीं था। परन्तु धीरे-धीरे अंग्रेज़ों ने व्यापार हथियाने के साथ-साथ भारत के शासन को भी हथियाना शुरु कर दिया। 1765 ई० तक बंगाल, बिहार और उड़ीसा का शासन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों में जा चुका था। 1770 ई. में बंगाल में भयानक अकाल पड़ा जिसमें लाखों लोग भूख से तड़प तड़प कर मर गये परन्तु अंग्रेज़ी शासन ने भूमि कर और बढ़ा दिया। भारतीय उद्योग धन्धे, कलाकौशल नष्ट होने लगे। डलहोज़ी की नीति ने भारत की आर्थिक अवनति के साथ-साथ देशी राज्यों की राजनीति में भी हस्तक्षेप शुरु कर दिया। 1853 ई. तक सतारा, नागपुर, झांसी, जौनपुर, सम्भलपुर, बघाट, उदयपुर के राज्य ब्रिटिश राज्य में मिला लिये गये थे। पेशवा बाजीराव की मृत्यु के बाद उनके दत्तक पुत्र नाना साहब की पेन्शन बन्द कर दी गई थी। तत्पश्चात् कर्णाटक के नवाब और तंजौर के राजा से भी अधिकार छीन लिए गये। अवध का राज्य भी हथिया लिया गया। अंग्रेज़ी शिक्षा और पादरी मिशनरियों के बढ़ते हुए प्रभाव से जनता को भय होने लगा कि शायद अंग्रेज़ी सरकार भारतीयों को ईसाई बना लेना चाहती है। रविवार की छुट्टी अनिवार्य कर देने से, मन्दिरों मस्जिदों को दान में मिले गांवों पर भी लगान लगा देने से तथा हिन्दु और इस्लाम धर्म की मान्यताओं में परिवर्तन लाने के प्रयासों से जनता अनुभव करने लगी कि उन की सामाजिक और धार्मिक परम्पराओं पर प्रहार किया जा रहा है। राजाओं, नवाबों से लेकर साधारण जनता तक आतंकित हो उठी। आयात निर्यात की नीति इस प्रकार लागू की

गई कि जनता को खाने को अन्न और पहनने को मोटा वस्त्र भी दुर्लभ हो गया। इन परिस्थितियों ने भारतीयों के हृदयों में क्रान्ति की भावना जगाई और वे संगठित होकर स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़े। 1857 ई. का मई मास था। बड़े रहस्यात्मक ढंग से गांव-गांव में और सैनिक छावनियों में क्रान्ति के प्रतीकरूप में गेहूं और बाजरे की रोटियां तथा कमल के फूल घुमाए जाने लगे। कोई क्रान्तिदूत छः चपातियां लेकर गांव के किसी प्रधानपुरुष के पास पहुँचा देता। वह उन में से कुछ टुकड़ा स्वयं लेकर बाकी को गांव वालों में बांट देता। नयी छः चपातियां बना कर दूसरे गांव में पहुंचाना उसका काम होता और इस प्रकार क्रान्ति का सन्देश देतीं इन चपातियों का सिलसिला चलता जाता। चपातियों पर कोई लेख नहीं लिखा होता था परन्तु जिसके हाथ में पड़ जाती थीं उसके स्पर्श मात्र से ही उस व्यक्ति में क्रान्ति की चेतना का संचार हो जाता था। इसी प्रकार कोई क्रान्तिदूत लाल कमल लेकर सैनिक शिविर में प्रविष्ट होता और भारतीय सैनिक अधिकारी के हाथों में कमल समर्पित कर देता। वह अधिकारी उस कमल को आदर भाव से देखता और अपने सहायक अधिकारी को पकड़ा देता। इस प्रकार वह कमल प्रत्येक सिपाही के हाथों से गुजर कर पुनः क्रान्तिदूत के हाथों किसी दूसरी सैनिक छावनी में पहुंचा दिया जाता। कमल का भारतीय संस्कृति में विशेष स्थान रहा है। विष्णु का नाभिकमल सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा का उत्पत्ति स्थान होने से जीवन का प्रतीक है। लक्ष्मी का कमलासन समृद्धि का प्रतीक है। गेहूं और बाजरे की रोटी भारत की अर्थव्यवस्था की प्रतीक है। विदेशी सरकार के द्वारा किया जा रहा शोषण भारत की संस्कृति और समृद्धि को समाप्त कर रहा है, इस वैचारिक चेतना ने भारतीयों को विदेशी शासन के विरुद्ध संगठित कर दिया। शासक और शासित का अन्तर अनुभव होने पर स्वाधीनता और पराधीनता की पहचान सामने आई। स्वाधीनता संग्राम की प्रथम कड़ी थी ई० सन् 1857 की महान् सशस्त्र क्रान्ति। कई कारणों से यह सफल न हो सकी परन्तु ब्रिटिश सरकार ने भारत की जनता को अत्याचार भरे शासन से छुटकारे का आश्वासन दिया। महारानी विक्टोरिया के घोषणा पत्र में स्पष्ट कर दिया गया कि भारतीयों के धार्मिक विश्वासों में हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा। भारतीय उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जायेगा और भारतीयों को वर्ण, और धर्म के कारण सरकारी

नौकरियों से वंचित नहीं किया जायेगा। जनता आश्वस्त हुई और राजभक्ति के गीत भी गाये जाने लगे। परन्तु कुछ ही समय बाद अंग्रेज़ी सरकार की पक्षपात पूर्ण नीति फिर सामने आ गई। देश के अनेक भागों में अकाल पड़ा परन्तु सरकार ने कृषि सुधार के लिए कोई यत्न नहीं किया। इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति के बाद भारत का कच्चा माल इंग्लैण्ड भेजा जाने लगा और वही माल तैयार हो कर तिगुने चौगुने दामों पर भारत में बिकने लगा। परिणाम यही हुआ कि भारतीय शिल्पी बेरोजगार होने लगे। ऊंची सरकारी नौकरियों की परीक्षायें लन्दन में होने से तथा उन में बैठने की आयु घटा देने से भारतीयों के लिए वे नौकरियां पाना अत्यन्त कठिन हो गया। सन् 1878 ई० में वर्नाकुलर प्रैस एक्ट लागू करके देशी भाषाओं के समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता छीन ली गई। भारतीय मजिस्ट्रेटों को यूरोपियन लोगों के मुकदमों का फैसला देने का अधिकार नहीं दिया गया। अंग्रेज़ी शिक्षा के माध्यम से भारतीय युवकों को भारतीय संस्कृति से विमुख करने का प्रयास किया जाने लगा। सन् 1878 ई. में ही आर्मी एक्ट पास करके भारतीय जनता का नि:शस्त्रीकरण कर दिया गया। इन सब घटनाओं की प्रतिक्रिया में देश में पुनः क्रान्ति के स्वर उभरे। अब सशस्त्र क्रान्ति का स्थान अहिंसात्मक स्वतन्त्रता संग्राम ने लिया। स्वामी दयानन्द ने अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में लिखा "कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है।" राष्ट्रीय जागरण की लहर पहले शिक्षित वर्ग में फैली। मिस्टर ह्यूम ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के ग्रेजुएटों के नाम खुला पत्र लिख कर उन्हें अपने सुख चैन और स्वार्थों से ऊपर उठ कर देश की स्वाधीनता के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी। सन् 1885 ई. में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई। कांग्रेस की स्थापना से पूर्व ही देश की आर्थिक अवनति के कारण जनता की विरोध-भावना की अभिव्यक्ति साहित्य में हो रही थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भारतदुर्दशा में स्पष्ट लिखा-

अंगरेज राज सुख साज सजै सब भारी
पै धन विदेस चलि जात इहै अति ख्वारी।
ताहू पै मंहगी काल रोग विस्तारी
दिन दूने दुःख देत ईस हा हा री।।

कितनी मार्मिक वेदना इन शब्दों में फूट पड़ी है-

रोवऊ सब मिलके आवहु भारत भाई
हा हा भारत दुर्दशा न देखी जाई

किसानों की दुर्दशा का वर्णन करते हुए कवि लालमुकुन्द लिखते हैं-

जो सब को गेहूं देते हैं वे स्वयं बाजरा खाते हैं।
जब वह भी नहीं मिलता तब वृक्षों की छाल चबाते हैं॥
जब छोटे बड़े लाट साहब शिमला में चैन उड़ाते हैं।
तब ये दुखियारे मर खप कर धूप में अन्न उगाते हैं॥
उस पर भी पापी लगान सारा अन्न हड़प कर जाता है।
और कभी कभी उस के बाद भी नहीं अघाता है॥

प्रतापनारायण मिश्र उद्योगों की अवनति के बारे में लिखते हैं-लखनऊ मिरजापुर आदि स्थानों पर जहां कंचन बरसता था, अब वहां धूल उड़ती है। तुम मेहनत कर के मर जाओगे। कहीं कोई अंगरेज़ बहादुर नई चीज़ निकालेंगे और सब समेट कर ले जायेंगे। इस दुरवस्था की प्रतिक्रिया में स्वदेशी की स्वीकृति और विदेशी के बहिष्कार का विचार उभरा। स्वदेशी के प्रतीक के रूप में चरखा सामने आया। स्वदेशी आन्दोलन नामक लेख में पं. मदनमोहन मालवीय ने लिखा-स्वदेशी आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य देश की आर्थिक दशा को सुधारना है। देश की आर्थिक दशा तभी सुधर सकती है जब देश में देशी चीज़ों का व्यापार बढ़े और जो हमारे नित्य की आवश्यक वस्तुएं हैं वे यहीं बनने लगें। विदेशी वस्त्रों को गुलामी का चिह्न बताते हुए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखते हैं-

मारकीन मखमल बिना चलत कछु नहीं काम।
परदेसी जुलहान के मानहुं भये गुलाम॥

स्वदेशी की भावना के साथ साथ राष्ट्रभाषा अपनाने का विचार भी स्वाधीनता संग्राम की पहचान बना। राष्ट्रिय विद्यालय खुले जिन में हिन्दोस्तानी भाषा का प्रयोग और चरखा चलाना ये दो बातें निश्चित रूप से रखी जाती

थीं। भारतेन्दु ने तो गाया था-

निजभाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के मिटै न हिय को शूल॥

स्वामी दयानन्द ने गुजराती होते हुए अपने ग्रन्थ हिन्दी में लिखे और सारे देश में इसके प्रयोग पर बल दिया। अन्धविश्वास, अस्पृश्यता, स्त्रियों की अशिक्षा, बालविवाह आदि सामाजिक बुराइयों को भी स्वाधीनता प्राप्ति में बाधक मान कर समाज सुधार के आन्दोलन भी स्वाधीनता संग्राम के अंग बने। इस बारे में 1890 ई० में क्रांग्रेस ने प्रस्ताव पास किया था। जागृत भारत में कवि माधवशुक्ल ने लिखा-

हो चमार भंगी या पासी विप्र पुजारी या संन्यासी
धनी दरिद्री हो उपवासी सब का भाग समान।

इस प्रकार हमारे स्वाधीनता संग्राम की वैचारिक पृष्ठभूमि में नैतिकता को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया था। सभी स्वार्थों और संकीर्णताओं से ऊपर उठ कर ही आत्मबलिदानी कहते थे-

सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।
देखना है जोर कितना बाज़ुए कातिल में है।।
हम उजड़ते हैं तो उजड़ें पर वतन आबाद रहे।
हम गिरफ्तार हों तो होवें पर वतन आज़ाद रहे।।

ऐसे बलिदानियों के आत्मबलिदान से प्राप्त हुई हमारी स्वाधीनता कितनी बहुमूल्य और पावन है! हमें सतर्क रहना होगा कि हमारी यह स्वाधीनता कहीं प्रादेशिकता, भाषा-विवाद, आपसी फूट, भ्रष्टाचार, रक्तपात जैसे कलंकों से दूषित न होने पाये।

ooo

अहिंसा के देवदूत गांधी जी

काम, क्रोध, लोभ आदि दूषित वृत्तियों के कारण मन वाणी तथा शरीर से किसी भी प्राणी को मानसिक या शारीरिक कष्ट पहुंचाना हिंसा और इस हिंसा से बचना अर्थात् किसी को दुःख न देना ही अहिंसा है। भारत के प्राचीन शास्त्रग्रन्थों में इसे परमधर्म कहा गया है। वैदिक ऋषि कहते हैं-हम सभी को मित्र की आंख से देखें, न किसी से डरें, न किसी को डरायें। महर्षि व्यास महाभारत में लिखते हैं-जो व्यवहार आप को अपने लिए बुरा लगता है वैसा किसी दूसरे के साथ मत करो। आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्। महावीर स्वामी तथा गौतम बुद्ध अहिंसा को मानवधर्म का सब से महत्त्वपूर्ण अंग मानते हैं। महर्षि पतञ्जलि ने कहा है कि जो महापुरुष अहिंसा की सिद्धि कर लेते हैं उनके सामने दुष्ट भी वैर छोड़ देते हैं। महावीर ने विषधर भुंजग का और गौतम बुद्ध ने अंगुलिमाल का हृदयपरिवर्तन अपने आत्मबल से ही किया था।

आधुनिक युग में भी भारत भूमि पर मोहनदास कर्मचन्द गांधी के रूप में ऐसे महामानव का जन्म हुआ जिसे हम अहिंसा का देवदूत कह सकते हैं। अहिंसा की जो वैज्ञानिक और व्यावहारिक व्याख्या गांधी जी ने की तथा उस का सफल प्रयोग भी करके दिखाया वही आधुनिक युग में विश्वशान्ति के लिए अमोघ अस्त्र है।

गांधी जी सत्य और अहिंसा को एक ही तत्त्व के दो पहलू मानते थे। उनके अनुसार अहिंसा की सिद्धि सत्य के द्वारा होती है और सत्य की सिद्धि ईश्वर है। ईश्वर सत्यस्वरूप है और प्रेमस्वरूप भी है इस लिए सब से प्रेम करने से ईश्वर की प्राप्ति सम्भव है। अहिंसा का सकारात्मक रूप है अपनी तरह सब से प्रेम करना। गांधी जी ने कहा था-मेरे लिए धर्म का अर्थ है सत्य और अहिंसा। सत्य की साधना के लिए अहिंसा अनिवार्य साधन है। अहिंसा की व्याख्या करते हुए गुजरात विद्यापीठ में उन्होंने कहा था-अहिंसा अद्वितीय बल

का शस्त्र है। यह जीवन का परम सार है। यह वीरों का गुण है, उनका सर्वस्व है। यह कायर की पहुंच में नहीं आता। यह कोई निष्प्राण मतान्धता नहीं है बल्कि जीवन्त एवं जीवनदायक शक्ति है। यह आत्मा का विशेष गुण है। अध्यापक के हाथों में यह पवित्र प्रेम का रूप ग्रहण कर लेता है। अहिंसा के सामने द्वेष टिक नहीं सकता। अहिंसा का सूर्य घृणा, क्रोध, द्वेष इत्यादि अन्धकार की शक्तियों को ध्वस्त कर देता है। आज़ादी की लड़ाई में गांधी जी ने अहिंसा की ताकत पर पूरा यकीन रखते हुए कह दिया था-

"मैं दुर्दमनीय आशावादी हूं और रक्तहीन अहिंसामय क्रान्ति के द्वारा स्वराज्यप्राप्ति में मेरा विश्वास अटल है। यदि हम अहिंसा और सत्य को अपना कर भी लक्ष्यप्राप्ति नहीं कर सकते तो मैं अनन्त धैर्य से प्रतीक्षा करूंगा। अहिंसा और सत्य की महिमा में मेरा विश्वास अडिग है।"

गांधी जी ने सामूहिक अहिंसा का शस्त्र के रूप में प्रयोग कर दिखाया। भारतीय सभ्यता में अहिंसा तो विद्यमान थी ही पर गांधी जी ने वैयक्तिक अहिंसा के साथ साथ सामूहिक अहिंसा का एक नया विचार हमारे सामने रखा। पश्चिम के विज्ञान और भारत के अध्यात्म के संयोग से सामूहिक अहिंसा का प्रकटीकरण हुआ जिस का प्रयोग करके हमें स्वराज्यप्राप्ति हुई। अंग्रेज़ों ने भारत पर अधिकार करने के बाद देश को नि:शस्त्र बनाना शुरु कर दिया था। अठारह सौ सत्तावन की सशस्त्रक्रान्ति के बाद उन्होंने भारत के लोगों को पूर्णतया नि:शस्त्र कर दिया ताकि वे सिर न उठा सकें। ऐसे निराशा के वातावरण में गांधी जी ने बताया कि शस्त्रों की ताकत से बड़ी आत्मा की ताकत है। सामूहिक अहिंसा के आधार पर सत्याग्रह करके उन्होंने नि:शस्त्र जनता में आश्चर्यजनक वीरता भर दी। इस सामूहिक अहिंसात्मक सत्याग्रह का प्रयोग उन्होंने पहले दक्षिण अफ्रीका में किया। उस के बाद भारत की जनता को लेकर इसी सामूहिक अहिंसा के द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य से लोहा लिया। अहिंसात्मक सत्याग्रह में कहीं कमियां भी रहीं, अहिंसा के साथ कहीं हिंसा भी दिखाई दी पर फिर भी विश्व के इतिहास में यह एक बहुत बड़ा चमत्कार हुआ कि नि:शस्त्र अहिंसक क्रान्ति के बल पर अंग्रेज़ों को भारत छोड़ना पड़ा। गांधी जी को घोर मानसिक कष्ट का अनुभव तब हुआ जब उन्हें यह समाचार दिया गया कि कांग्रेस नेताओं ने मुस्लिमलीग की मांग पर जनहित में देश का दो

हिस्सों में बंटवारा स्वीकार कर लिया है। स्वराज्यप्राप्ति के बाद दोनों भागों में जो साम्प्रदायिक दंगे हुए उससे गांधी जी बहुत दु:खित हुए। जब दिल्ली में पन्द्रह अगस्त को स्वतन्त्रता प्राप्ति का जश्न मनाया जा रहा था तब गांधी जी नोआखली की सड़कों पर साम्प्रदायिक हिंसा को शान्त कर रहे थे। अहिंसा के उस देवदूत का साम्प्रदायिक एकता के लिए ही बलिदान हुआ। पाकिस्तान दो राष्ट्रों के सिद्धान्त पर मुस्लिम राष्ट्र बना। भारत में धर्मनिरपेक्षता के आधार पर गणतन्त्र की स्थापना हुई। गांधी जी ने कहा-हिन्दु, मुसलमान, पारसी, ईसाई जो भारत को अपना देश बना चुके हैं परस्पर बन्धु हैं और उन्हें एकता में रहना होगा यदि उन्हें अपने हित प्रिय हैं। छोटी छोटी बातों में कोई बहाना लेकर हिंसा करने लगना ताकत का नहीं, कमज़ोरी का द्योतक है। आपसी मतभेदों का निराकरण विचारपूर्वक होना चाहिए न कि हिंसा से। इस प्रकार उन्होंने सब भारतीयों को अपने अपने धर्म का पालन करते हुए अन्य धर्मों का आदर करने की प्रेरणा दी।

हमारा देश भारत सारी दुनिया का ही एक छोटा रूप है क्योंकि यहां अनेक जातियों के, अनेक धर्म सम्प्रदायों को मानने वाले, अनेक भाषाओं को बोलने वाले, अनेक रीति रिवाज़ों को स्वीकारने वाले करोड़ों लोग रहते हैं। यदि यह देश गांधी जी के अहिंसा सिद्धान्त को मान कर अपने मसले हल कर सकता है तो पूरी दुनिया को भी शान्ति की राह दिखा सकता है।

आज सारी दुनिया के सामने सब से बड़ी आवश्यकता विश्वशान्ति की है। पिछले दो महायुद्धों में हिंसक युद्ध के परिणाम हम देख चुके हैं। आज सभी छोटे बड़े देश विज्ञान की मदद से ऊंचे ऊंचे शस्त्रों की खोज में इस आशा से जुटे हैं कि यदि हमारे पास शस्त्रास्त्रों की शक्ति होगी तो कोई हम पर हमला नहीं करेगा। इस प्रकार शान्ति के लिए अशान्तिदायक और निर्भयता के लिए भय पैदा करने वाले अस्त्र शस्त्र बनाये जा रहे हैं। अब तो पलों क्षणों में लाखों करोड़ों का संहार कर देने वाले एटम बम, हाइड्रोज़न बम आदि परमाणु अस्त्र आ पहुंचे हैं। इन अस्त्रों के आगमन के बाद तो दुनिया के सामने एक स्पष्ट विकल्प है आप या तो प्रेम से रहें या सर्वनाश के लिए तैयार रहें। इन सर्वनाशी अस्त्रों के डर से अब दुनिया के आगे अहिंसा के सिवा चारा नहीं रहा। जिन देशों में खूनी क्रान्तियां हुई हैं वे भी आज निरस्त्रीकरण के पक्ष की बातें कर

रहे हैं। अणुशक्ति सम्पन्न देश भी अणुशक्ति के प्रयोग न करने की मांग रख रहे हैं। पर इस का मतलब यह तो नहीं होना चाहिए कि आपसी झगड़ों के निपटारे के लिए या एक दूसरे को दबाने के लिए विभिन्न देश पारम्परिक हथियारों का प्रयोग बढ़ाते जायें। आज जब देशों की सरकारें एक दूसरे की होड़ में सेनायें बढ़ाती जाती हैं तो उनके रख रखाव के लिए तथा हथियारों के निर्माण या खरीद के लिए बजट भी बढ़ाने पड़ते हैं। करों का बोझ बेचारी जनता को उठाना पड़ता है। जो पैसा गरीबी, अशिक्षा, बीमारी आदि को दूर करने के लिए लगना था वह मिलिटरी पर लगता है। अब हिंसा वृत्ति से उत्पन्न इन बातों को सभी देशों की आम जनता समझने लगी है तथा मांग करने लगी है कि उन की सरकारें देशों के आपसी झगड़ों को लड़ाई से नहीं बल्कि बातचीत के माध्यम से हल करें। लड़ाइयों के बाद भी तो आखिर समझौते और शान्ति के प्रयास ही होते हैं। विश्व का यह बदलता हुआ दृष्टिकोण हिंसा पर अहिंसा की विजय ही है और इसी लिए आज के युग में अहिंसा के देवदूत गांधी जी की प्रासंगिकता है। आज यह अनुभव किया जा रहा है कि यदि हम विश्वशान्ति का सपना साकार करना चाहते हैं तो हमें गांधी के विचारों को नये सिरे से समझना और अपनाना होगा। गांधी के अहिंसात्मक प्रयोगों का उपयोग सफलता पूर्वक अफ्रीका (नेल्सन मण्डेला के द्वारा) अमेरिका (मार्टिन किंग लूथर के द्वारा) जर्मनी, हंगरी आदि देशों में किया जा चुका है। आवश्यकता है कि विश्व के सभी राष्ट्र सत्य और अहिंसा का पालन करते हुए विश्वशान्ति की ओर कदम बढ़ाएं।

ooo

जब गांधी जी को कश्मीर में रोशनी की किरण दिखाई दी

भारत को आज़ादी मिलने से पूर्व गांधी जी ने जम्मू कश्मीर की अन्तिम यात्रा की थी। उनके साथ थे बिशन भाई, ब्रजकृष्ण चांदीवाला, मनु, आभा और डा. सुशीला नय्यर। रावलपिंडी होते हुए वे पहली अगस्त को श्रीनगर पहुंचे। तीन दिन वहां लाला किशोरीलाल के बंगले में ठहरे तथा चार अगस्त को जम्मू आए और पुरानी रिहाड़ी में पं० जगन्नाथ रिटायर्ड सुपरिटैन्डैन्ट रणवीर प्रैस वालों के घर पर ठहरे। अपने पिता जी के साथ जम्मू में मुझे भी उनके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जम्मूकश्मीर की यात्रा से पूर्व गांधी जी ने दिल्ली में ही ऐलान कर दिया था कि वह जम्मू कश्मीर में कोई भाषण नहीं देंगे। श्रीनगर में जहां वे ठहरे थे वहां घर के आंगन में प्रार्थना सभा अवश्य होती थी। जम्मू में मुझे स्मरण नहीं कि प्रार्थना सभा हुई। हम लोग पंक्तिबद्ध होकर गांधी जी को नमस्कार करते हुए उनके पास से गुज़र रहे थे और मुझे उस समय ऐसा लगा कि उन की वह शान्त मन्द मुस्कान हम को उज्ज्वल प्रकाश से भर रही है। मेरे लिए तो उन का दर्शन बहुत बड़ी उपलब्धि थी तथा प्रेरणा का स्रोत भी।

सोलह अगस्त 1946 को मुस्लिम लीग ने जब 'सीधी कारवाही' दिवस मनाया, उसी दिन से देश में खून की नदियां बहने लगी थीं। जिस अहिंसा के बल पर गांधी जी देश को स्वतन्त्रता के द्वार तक लाए थे अपनी उसी जीवनसंगिनी अहिंसा को वह देश के विभिन्न भागों में अपमानित होती देख-देख कर बार-बार कहते थे ''इस पतन को देखने के लिए मैं जिन्दा नहीं रहना चाहता। करूंगा या मरूंगा।'' कश्मीर में साम्प्रदायिकता की वह ज्वाला नहीं धधकी थी, इसी लिए गांधी जी को वहां रोशनी की किरण दिखाई दी थी। हैदराबाद से आए एक पत्र में एक भाई ने लिखा था, ''गांधी को जिन्दा

दफ़नाया जा रहा है। गांधी के माने गांधी के उसूल। इन्हीं उसूलों से हम इस दरजे तक पहुंचे हैं लेकिन जिस सीढ़ी से हम ऊपर उठे उसी को तोड़ रहे हैं। यह काम वे लोग कर रहे हैं जो गांधी के सब से बड़े अनुयायी भी कहलाते हैं। हिन्दु मुस्लिम एकता, हिन्दुस्तानी खद्दर, ग्रामोद्योग-ये सब खतम कर दिये गये हैं। फिर भी जो इनकी बातें करते हैं या तो धोखे में हैं या जानबूझ कर धोखा दे रहे हैं''। तीन अगस्त 1947 को गांधी जी ने श्रीनगर में इस पत्र पर जो टिप्पणी लिखाई उस में स्वीकार किया कि उस भाई के इलज़ाम में काफी सच्चाई है पर इस के साथ ही अपनी उम्मीद जताई कि करोड़ों देहाती ये चारों चीजें मानते हैं। वे लिखते हैं-''अब तो यह भी तय हो गया है कि हम सब दोनों हिस्सों (भारत और पाकिस्तान) के शहरी हैं। हम आशा रखें और ऐसा बरताव करें जिस से पासपोर्ट की जरूरत ही न रहे। यह भी आशा रखें कि दोनों में से कोई भी खद्दर नहीं छोड़ेंगे, देहाती उद्योग धन्धों को नुकसान नहीं पहुंचाएंगे।''

श्रीनगर में एक भाई के द्वारा अल्पसंख्यकों के बारे में सवाल पूछे जाने पर गांधी जी ने लिखा था ''किसी भी उपनिवेश के बहुसंख्यकों पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है और अब तो हर हालत में दो सार्वभौम राज्य बन गये हैं तब इन में से हर राज्य को अपने यहां रहने वाले अल्पसंख्यकों के प्रति उचित व्यवहार की गारंटी देनी होगी। मगर हम उम्मीद करें कि ऐसा मौका कभी नहीं आएगा। मैं भी मानता हूं कि हर एक हक के साथ एक फर्ज जुड़ा हुआ है। ऐसा कोई हक नहीं जो ठीक तरह से अदा किये गये फर्ज से न निकलता हो।''

गांधी जी की इन टिप्पणियों से पता चलता है कि तब तक गांधी जी को उम्मीद थी कि देश के बंटवारे के बाद दोनों मुल्कों की सरकारें अपने यहां के अल्पसंख्यकों को सुरक्षा प्रदान करेंगी। सभी धर्मों के लोग मिल कर रहेंगे। दोनों मुल्क अपने यहां स्वदेशी और ग्रामोद्योगों को बढ़ावा देकर गरीबी, बेरोजगारी मिटायेंगे और अपने अपने गांवों तक आज़ादी के लाभ पहुंचायेंगे। पर यह सब नहीं हुआ। गांधी जी की उम्मीदों पर दोनों मुल्कों के लोग खरे नहीं उतरे। दोनों ओर से लाखों लोग घरों से बेघर हुए, लाखों का कत्ल हुआ, स्त्रियों बच्चों पर जुल्म हुए। इन बर्बर घटनाओं ने गांधी जी को बेहद व्यथित

कर दिया था। पन्द्रह अगस्त को राजधानी दिल्ली राष्ट्रिय झंडों से दुल्हन की तरह सजी थी। भारत माता की जय, बापू गांधी जी की जय के नारों से आकाश गूंज रहा था पर गांधी जी इन सब खुशियों से दूर दिल में दर्द लिए बंगाल की गलियों में दंगे शान्त करवा रहे थे और अपने प्राणों की परवाह किये बिना वे दंगाइयों के बीच घूम कर उन्हें अहिंसा का पाठ पढ़ा रहे थे। एक सितम्बर को उन्होंने इसी खातिर अनशन शुरु किया। अनशन का असर जादू की तरह हुआ और बंगाल में शान्ति की लहर आ गई। 4 सितम्बर को 73 घण्टे बाद गांधी जी ने उपवास खोल दिया। लन्दन टाइम्स के संवाददाता ने उस समय कहा था जो काम सेना के कई डिविज़नों से नहीं हो सकता था उसे एक उपवास ने कर दिया। स्वयं माउंटबेटन ने कहा था-जो चीज़ गांधी जी ने आत्मिक बल से प्राप्त कर ली है, उसे चार फौजी डिविज़न भी बल प्रयोग से हासिल नहीं कर सकते थे। उसके बाद गांधी जी दिल्ली पहुंचे जहां लगभग पांच मास की अन्तिम यात्रा के बाद शान्ति के लिए वह शहीद हुए। गांधी जी के जन्मदिवस पर हम सब गिरेबान में मुंह डाल कर देखें कि हम कहां जा रहे हैं ? देश को कहां ले जा रहे हैं ?

ooo

नशाबन्दी की आवश्यकता

भारतीय संविधान की धारा 47 में यह अंकित है कि "राज्य अपनी जनता के पोषक भोजन और जीवन निर्वाह के स्तर को ऊंचा करने और सार्वजनिक स्वास्थ्य के सुधार को अपने प्रारम्भिक कर्तव्यों में प्रमुख समझेगा और विशेषतः यह प्रयत्न करेगा कि नशीले पेयों और नशीली दवाइयों के, जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं, प्रयोग की बन्दिश हो सिवाय उनके जो चिकित्सा के काम की हैं।"

परन्तु आज हमारी राज्य सरकारें शराब से मिलने वाले कर को अपनी आय का मुख्य साधन समझने की भूल कर रही हैं। अन्धाधुन्ध मद्यसार की दुकानों में वृद्धि हो रही है, बिना इस बात की परवाह किये कि नशाखोरी से कितने घातक परिणाम निकलते हैं, कितने परिवार उजड़ते हैं, कितने बच्चे भूखे रहते हैं, कितनी माताएं, बहनें, पत्नियां घुट घुट कर मरती हैं या घर छोड़ने को मजबूर होती हैं। वैज्ञानिक पड़ताल के आंकड़े इस बात को प्रकट करते हैं कि अमेरिका में सारी यातायात दुर्घटनाओं में से 40 प्रतिशत और शहरी क्षेत्रों में घातक सिद्ध होने वाली यातायात दुर्घटनाओं में से 51 प्रतिशत का सम्बन्ध शराब पिये हुए ड्राइवरों या पदयात्रियों से होता है।

अमेरिका में जीवन बीमा कम्पनियों ने नशे से होने वाली मौतों के बारे में व्यापक अनुसन्धान किये हैं। बीस लाख लोगों के जीवन वृत्तों का अध्ययन करके यह पता चला है कि नशे की आदत के कारण मृत्युदर 50 प्रतिशत से ऊपर बढ़ी है। स्टील की मिलों में काम करने वाले कर्मचारियों की मृत्युदर 1000 में से 117 थी जब कि यह गर्मलोहे का काम घातक धंधा है पर इस के मुकाबले में होटलों, क्लबों के बार में काम करने वाले वेटरों की मृत्यु दर 178 प्रति हज़ार निकली। इसी तरह चिकित्सा बीमा कम्पनियों ने सिद्ध किया कि 11323 व्यक्तियों में से परीक्षण की अवधि में जहां सामान्य रूप से जीवन जीने वालों में 378 मौतों की आशङ्का थी वहां नशे के प्रयोग के कारण 698 मौतें हुई और कम्पनी को 6 लाख डालर की हानि हुई। डाक्टरों के अनुसार शराब के प्रयोग का सीधा दुष्प्रभाव जिगर, गुर्दों, हृदय और मस्तिष्क पर पड़ता

है। जिगर के रोगों से पीड़ित रोगियों का बहुत बड़ा प्रतिशत नशा करने वालों का होता है। लन्दन के मद्यपान करने वाले को सड़क से हटा दें तो हम शराब पीने के कारण होने वाली यातायात दुर्घटनाओं से बच जाएंगे।

राज्य सरकारों को शराब बेचने से बड़ा राजस्व प्राप्त होता है अत: आर्थिक लाभ के लिए सरकारें नशे की दुकानें चलाती हैं। परन्तु यह एक भ्रान्ति है कि इस से लाभ होता है। शराब और दूसरी नशीली दवाइयों के कारण जो अपराध किये जाते हैं उनकी रोक थाम के लिए जो खर्चा पुलिस पर और अदालतों में होता है, उसे गिने तो सरकारें भी हानि में रहती हैं। केलिफोर्निया में उसके विषय में खोज की गई तो पता चला कि एक खास साल में शराब कर 25 मिलियन डालर (लगभग 175 करोड़ रु.) जमा हुआ। इस अवधि में इस शराब की वजह से चले मुकदमों, जिन में अदालत, जेल और पागल गृह शामिल हैं, पर 270 मिलियन डालर (लगभग 1890 करोड़) खर्च हुए। अर्थात् शराब कर के रूप में जमा किये गये प्रत्येक डालर के लिए कैलिफोर्निया राज्य को 10 डालर से अधिक खर्च करना पड़ा। उस समय डालर 7 रु० का था।

इस के साथ ही यदि नष्ट भ्रष्ट हुए व्यवसायों, टूटे बिखरे परिवारों, आवारा भूखे बच्चों, शराब के कारण हुई मानसिक तथा शारीरिक बीमारियों पर हुए खर्चों को भी जोड़ा जाता तो यह खर्च कई गुना अधिक हो जाता।

एक और बात भी विचारणीय है कि क्या हमारी सरकारों को हर ऐसा अच्छा-बुरा काम कर लेना चाहिए जिस से सरकार की आमदनी बढ़े ? आप चोरी, व्यभिचार पर टैक्स लगा कर आमदनी बढ़ाने की सलाह नहीं दे सकते। पाप को रोकना ही कर्त्तव्य है, उसे पैसे लेकर बढ़ाना तो नहीं।

शराब की भट्टियों के लिए जो लाखों टन अनाज फूंके जाते हैं वे गरीबों के लिए ये वस्तुएं और महंगी और दुर्लभ कर रहे हैं। हज़ारों एकड़ उपजाऊ भूमि शराब के कारखानों और भट्टियों को चालू रखने के काम आ रही हैं जिस का उपयोग गरीबों का पेट भरने को हो सकता था।

आवश्यकता है कि हमारी सरकारें नशाबन्दी के महत्त्व को समझें और दिन प्रतिदिन बढ़ते हुए शराब के धन्धे को रोकें अन्यथा हमारी नयी पीढ़ी का शारीरिक तथा मानसिक ह्रास होता जाएगा।

ooo



वेदकुमारी घई

एम.ए., पीएच.डी.

राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित

नाम : वेदकुमारी घई

जन्म तिथि : 14-12-1931

जन्म स्थान : जम्मू तवी

शिक्षा : एम.ए. संस्कृत, एम.ए. प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति, पीएच.डी. संस्कृत, डिप्लोमा जर्मन एवं डेनिश

रचनायें :

1. नीलमतपुराण भाग एक (सांस्कृतिक एवं साहित्यिक अध्ययन अंग्रेज़ी में) 1968
2. नीलमतपुराण भाग दो (आलोचनात्मक संस्करण एवं अंग्रेज़ी में अनुवाद) 1994
3. नीलमतपुराण (दोनों भागों का हिन्दी में अनुवाद) 2016
4. कश्मीर दर्पण 1973
5. कश्मीर का संस्कृत साहित्य को योगदान 1989
6. स्टडीज़ इन फौनैटिक्स एण्ड फोनोलाजी 1991
7. पुरन्ध्रीपञ्चकम् (पांच संस्कृत नाटक) 1998
8. योगदर्पण 2011
9. सन्ध्यादर्पण 2013
10. वेदामृत 2017
11. सूर्यशतक 2008
12. नरेन्द्रदर्पण 1974
13. काश्मीर शैवदर्शन
14. श्री अमरनाथ यात्रा
15. वैदिक नित्यकर्म विधि
16. विचारतरङ्ग

प्रो० रामप्रताप के साथ सहलेखन

1. सांस्कृतिक और साहित्यिक निबन्ध 1972
2. राजेन्द्र कर्णपूर 1973
3. भल्लट शतक 1985
4. ऊर्मिका (संस्कृत कवितायें) 1987
5. मेरे गीत तुम्हारे गीत, 1987
6. पाण्डुलिपि विज्ञान (सम्पादन)
7. ऋतम्भरा (सम्पादन)